उस गिरी और कूटकी यात्रा की एवं उस कूटकी यात्रासे उसने यथेष्ट फलका अनुभव किया।

प्रकरणमे यह भी कहा गया है कि भव्योंको यह यात्रा होती हैं। अभव्योंको नहीं होती है। एक अभव्य राजा भी इनके साथ हो गया। परन्तु मार्गमे ही पुत्रमरणका स्वप्न देखकर वह वापिस लौटा। जटासेन राजाने भी यह यात्रा की, जिनदीक्षा लेकर मुक्ति गया। इस प्रकारका विवेचन है।

पांचवे अध्यायमे सुमति तीर्थंकरकी स्तुति करते हुए सुमतिनाथ तीर्थंकरके पंचकल्याणकोंका निरूपण किया है। जिस कूटसे सुमतिनाथ तीर्थंकर मुक्तिको गये उस कूटका नाम अविचल है। इस कूटकी महिमा कही गई है। उस कूटकी यात्रा आनन्दसेन नामक राजाने की, उसका भी वर्णन इस अध्यायमे है।

छठे अध्यायमे पद्मप्रभ तीर्थंकरका विवेचन करते हुए वे जिस कूटसे मुक्तिको गये उस मोहनकूटका वर्णन है। मोहनकूटसे वे मुक्तिको प्राप्त भये। तदनंतर अनन्तसिद्धोने उस कूटसे सिद्धधामको प्राप्त किया, साथमे सुप्रभनामके राजाका उल्लेख अवश्य करना चाहिए। सो सुप्रभराजाने भी उक्त कूटका व पवित्रपर्वतका दर्शन किया।

सातवे अध्यायमे सुपार्श्वनाथ तीर्थंकरकी स्तुति करते हु ग्रन्थकारने उनके पंचकल्याणोंका निरूपण किया है। साथमे उस उस कूटकी भी महिमा बताई गई है जिससे वह मुक्तिको प्राप्त का गये। वह कूट प्रभास था, उसके दर्शनसे कुष्टरोगसे पीडित राज उद्योतकने भी प्रकाशमान शरीरको धारण किया। इस प्रकार इस कूटकी व गिरिराजकी महिमा है।

आठवे अध्यायमे आठवे तीर्थंकर चन्द्रप्रभका उल्लेख है चन्द्रप्रभ भगवान्के पंचकल्याणोंका निरूपण करते हुए वे जि कूटसे मुक्तिको गये उस ललितघटा कूटका वर्णन है। उस कूटकी यात्रा ललितदत्तराजाने की। एवं करोडों भव्योंके साथ मुक्तिको प्राप्त किया।

नौमें अध्यायमें पुष्पदन्त तीर्थंकरका विवेचन है एवं पुष्पदन्त तीर्थंकरके पंचकल्याणोंका वर्णन करनेके वाद जिस कूटसे पुष्पदन्त तीर्थंकर मुक्तिको गये उस सुप्रभकूटका विवेचन है। उस सुप्रभकूटकी यात्रा शुभसेन राजाने की। नन्तर सोमप्रभ नामक राजकुमार होकर उत्पन्न हुआ। सोमप्रभ राजकुमारनें संघसहित यात्रा की। एवं उसके फलसे सांसारिक राज्यवैभवको पाकर मुक्तिलक्ष्मीको भी प्राप्त किया।

दसमें अध्यायमे शीतल तीर्थंकरके पंचकल्याणका वर्णन करते हुए वे जिस कूटसे वे मुक्तिको गए उस विद्युद्वर कूटका वर्णन है। उस कूटसे अनंतसिद्ध मुक्ति पदको प्राप्त हुए, साथमे अविचल नामके राजाने भी यात्रा कर दीक्षा ली व तपश्चर्या कर मुक्तिको प्राप्त किया।

ग्यारहमें अध्यायमे श्रेयांसनाथ तीर्थंकरके पंचकल्याणोंका विवेचन करते हुए जिस संकुलकूटसे वे मुक्तिको गए उसका भी वर्णन किया है। नंदिषेण, आनंदसेन आदि राजाओंने उस पवित्र पर्वत व कूटकी यात्रा की एवं मोक्षको प्राप्त किया।

वारहमें अध्यायमे विमल तीर्थंकरका विवेचन है। विमलनाथके पंचकल्याणोंके कथन करते हुए ग्रन्थकारने जिस वीरसंकुल कूटसे वे मुक्ति गये उसकी महिमाका विधान किया है। अनंत सिद्धोंने उस कूटसे मुक्तिको प्राप्त किया, साथ ही सुप्रभ राजाने भी चतुस्संघके साथ यात्रा कर मुक्तिको प्राप्त किया।

तेरहमें अध्यायमे अनन्त तीर्थंकरके पंचकल्याणोंका निरूपण करते हुए, अनन्ततीर्थंकर जिस स्वयंभू कूटसे मुक्तिको गये, उस स्वयंभू कूटका वर्णन है। उस स्वयंभू कूटकी यात्रा चारुषेण नामक राजाने की। अनंतसिद्धोंने उस कूटसे आत्मसिद्धिको प्राप्त किया।

चौदहमें अध्यायमे धर्मनाथ तीर्थंकरकी स्तुति करते हुए

धर्मनाथतीर्थंकरके पंचकल्याणोंका विवेचन है। एवं धर्मनाथ तीर्थंकर जिस दत्तवरकूटसे निर्वाणको प्राप्त हुए उसका भी वर्णन है। राजा भावदत्तने उक्त कूटकी यात्रा की । तपश्चर्याकर मुक्तिको प्राप्त हो गया ।

पन्द्रहमें अध्यायमे भ० शांतिनाथ तीर्थंकरके पंचकल्याणोंका विवेचन है । भ० शांतिनाथ तीर्थंकर ही नहीं थे, चक्रवर्ती भी थे। वे × प्रभास कूटसे मुक्तिको गये । सोमशर्मा ब्राम्हण दरिद्र होनेपर भी उत्कट भावनासे किस प्रकार उस कूटकी वंदना की, वगैरे कथन उस कूटकी ओर आकर्षित करनेवाले हैं। वह कूट व पवित्र गिरिराज वंदनीय है ।

सोलहमें अध्यायमे कुंथुनाथ तीर्थंकरके पंचकल्याणोंका ए ज्ञानधर कूटका वर्णन है। श्री कुंथुनाथ भी चक्रवर्ती थे। ज्ञानध कूटसे असंख्य मुनिराज सिद्धावस्थाको प्राप्त हुए हैं। राजा सोमधर उक्त कूटकी एवं सिद्धक्षेत्रकी यात्रा भावपूर्वक की। जिसके फल क्रमसे मुक्तिको प्राप्त किया ।

सत्रहमें अध्यायमे अरनाथ तीर्थंकरका विवेचन है। अं अर जिस जिस कूटसे मुक्तिको गए उस नाटककूटका भी व है। वह पवित्र है, अनन्तसिद्धोंके मुक्तिसे पावन होगया है सुप्रभ राजाने भी उस कूटकी वदना कर क्रमशः मुक्तिको प्राप्त किय

अठारहमें अध्यायमे मल्लिनाथ तीर्थंकरके पंचकल्याणोंका विवेचन है। मल्लिनाथ तीर्थंकर जिस संबलकूटसे मुक्तिको प्राप्त हुए, उस संबलकूटका भी विवेचन किया गया है। उस कूटकी यात्र राजा तत्वसेनने की। अनंतसिद्धोंकी तपश्चर्यासे वह कूट पावन है

उन्नीसमें अध्यायमे मुनिसुव्रत तीर्थंकरके पंचकल्याणोंक विवेचन है। सायमे उस निर्जराकूटका वर्णन है, जिससे मु सुव्रतनाथ मुक्तिको गये हैं। इस कूटसे अनंतसिद्ध मुक्ति गये

---

× इस कूटका भी नाम प्रभास है। हमने इसका स्पष्टीकर प्रस्तावनामे किया है।

प्रभु रामचन्द्रने भी इस कूट व पर्वतकी वंदना की । एवं क्रमशः मोक्षपदको प्राप्त किया ।

बीसवें अध्यायमें नमिनाथ तीर्थंकरके पंचकल्याणोंका विवेचन है । साथमें मित्रधरकूटका वर्णन है । मित्रधरकूटसे वह नमितीर्थंकर व अनन्तसिद्ध मुक्तिको प्राप्त कर गये । मेघदत्त नामक राजाने भी इस कूटकी यात्रा की । एवं क्रमशः उत्तम पदको प्राप्त किया ।

इक्कीसवें अध्यायमें भ० पार्श्वनाथके पंचकल्याणोंका विवेचन है । और भ० पार्श्वनाथ स्वर्णभद्र कूटसे मुक्तिको गये । उसका भी विवेचन किया गया है । अनन्तसिद्धोंने इस कूटसे मुक्तिको प्राप्त किया एवं भावसेन महाराजने भी यात्रा की एवं उन यात्राके फलको प्राप्त किया ।

इस प्रकार उक्त ग्रन्थमें विषय विवेचन है । भ० आदिनाथ कैलासपर्वतसे, भ० महावीर पावापुरसे, भ० नेमिनाथ गिरनारसे एवं भ० वासुपूज्य चम्पापुरसे मुक्तिको प्राप्त हुए हैं ।

इस प्रसंगमें यात्रार्थी किस प्रकार हो, यात्रार्थीको किस नियमके साथ यात्रा करनी चाहिये, यात्रार्थीने यदि संयम भावनासे यात्रा की तो किस प्रकार वह यात्रा करे । यात्रा करनेका क्या फल होता है वगैरे विशदरूपसे ग्रन्थकारने विवेचन किया है ।

इस ग्रन्थके अध्ययनसे एक विषयपर अधिक प्रभाव पडता है कि उक्त सिद्धक्षेत्र दिगंबर साधुओंका सिद्धस्थान है । सभी तीर्थंकर दिगंबर होकर ही मुक्ति गये हैं । और अनन्तसिद्ध दिगंबर होकर ही निर्वाणको प्राप्त हुए हैं । और जिन जिन राजाओंने यात्रा की वे भी दिगंबर जैनधर्मके अनुयायी थे । एवं सिद्धिको प्राप्त करते हुए उन्होंने दिगंबरत्वको स्वीकार करते हुए ही महाव्रत वगैरे धारण किया था । इसलिए सर्वसिद्धक्षेत्र एवं यह सिद्धक्षेत्र

## ग्रन्थरचना काल.

इस ग्रन्थरचनाके कालके संबंधमे कविने स्वयं कहा है। वह इस प्रकार है।

वाणवार्धिगजेन्दौ श्रीविक्रमाद्गतवत्सरे ।
भाद्रकृष्णदले तिथ्यां द्वादश्यां गुरुवासरे ॥ ११३ ॥
पुष्ये भे देवदत्तेन कविना शुद्धवुद्धिना ।
श्रीसम्मेदमाहात्म्य-मेनं पूर्णीकृतं वुधाः ॥ ११४ ॥

अ० अंतिम.

वाण ५, समुद्रसे ४ गज ८ इंदुसे १ इससे अंकानां वामतो गतिः, इस नियमानुसार १८४५ वि० सं० भाद्रपद कृष्ण द्वादशी गुरुवारको पुष्यनक्षत्रमे पूर्ण किया है।

उस दिन गुरुपुष्यामृत योग था, अतः यह ग्रन्थ समादरको प्राप्त करेगा ही, साथमे लोकमे सद्विद्याका प्रकाश भी करेगा। इसमे कोई संदेहकी वात नहीं है।

## यात्राका फल.

सम्मेदशिखरकी यात्रा करनेवालोंको नरकतिर्यंचगति नहीं होती है, ऐसा कहा जाता है। यथार्थमे यह सत्य है। क्योंकि भावपूर्वक एक वार भी वंदना करे तो उसे नरक पशुगति नहीं होती है।

" एक वार वंदे जो कोई ताहि नरक पशुगति नाही "

इस वाक्यपर जिस प्रकार श्रद्धा चाहिये उसी प्रकार यात्रामे भी श्रद्धा होनी चाहिये। भक्ति व भावपूर्वक जो यात्रा की जाती है, उसका फल अवश्य मिलता है। अनंतसिद्धोंके तपसे पवित्र अणुरेणुकी वंदना की जाती है, वह व्यर्थ नहीं जाता है। संसारसे भी उत्तम गतिको वह प्राप्त करता है। साथमे भव्य होनेसे मुक्तिको भी प्राप्त करता है। इसलिए सम्मेदशिखर व उसके कूटोंका दर्शन महिमापूर्ण है।

## लोहाचार्यकी परंपरा क्या है ?

अंगधारी मुनियोमे लोहाचार्यका उल्लेख है । तिलोय-पण्णत्तिके गाथा नं १४९०–९१ मे इस लोहाचार्यका उल्लेख किया गया है। वैसे अनेक लोहाचार्य हुए है, परन्तु जिनकी परंपरामे देवदत्त सूरिका वर्णन आता है वह लोहाचार्य एक अंगके ज्ञानसे विभूषित थे । तिलोयपण्णत्तिमे लिखा गया है ।

## आचारांगधारी.

पढमो सुभद्दणामो जसबद्दो तह य होवि जसवाहू
तुरियो य लोहणामो एदे आचार अंगधरा ॥ १४९० ॥

सेसेयकरसंगाणं चोद्दस पुव्वाणमेवफदेसधरा ।
एयकसयं अट्टारसवासजुदं ताण परिमाणं ॥ १४९१ ॥

आचारांगधारियोमे १ ले सुभद्र, २ रे यशोभद्र, ३ रे यशोबाहु एवं चतुर्थ लोहार्य नामके हुए हैं । उक्त चारो आचार्य एकांगधारी थे ही । साथमे शेष ११ अंगके एवं चौदह पूर्वके एक देशको धारण करनेवाले थे । इनके कार्यकालका प्रमाण एक सौ अठारह वर्ष है ।

इसी आचारांगधारी एवं ११ अंग चौदह पूर्वके एक देशधारी लोहाचार्यकी परंपरामे देवदत्तसूरि हुए हैं । उन्हीके द्वारा इस ग्रन्थकी रचना की गई है । श्री लोहाचार्यके विषयमे किंवदंती है कि वे रोज एक जैनेतरको जैनधर्मकी दीक्षा दिये विना आहार ग्रहण नहीं करते थे । पूर्व महर्षियोमे दयालुता थी ।

## देवदत्तसूरि कौन थे ?

देवदत्तसूरिके नामसे इस ग्रन्थकर्ता है । परन्तु हस्त-लिखित प्रतिमे अध्यायके अंतमे निम्नलिखित वाक्य मिलता है । इसलिए इस ग्रन्थकी रचना करते समय देवदत्तसूरि जैनदीक्षासे दीक्षित भी हुए थे ऐसा मालूम होता है ।

वह वाक्य इस प्रकार है-

इति श्रीमल्लोहाचार्यानुक्रमेण भट्टारक जिनेंद्रभूषणोपदेशात् श्रीमद्दीक्षितदेवदत्तकृते श्रीसम्मेदशिखरिमाहात्म्ये सगरचक्रवर्ति यात्रावर्णनो नाम द्वितीयोध्यायः।

## कूटोंके नाममे अन्तर.

अन्य कूटोंके प्रचलित नाम ही इस प्रतिमे भी हैं। परन्तु कुछ कूटोंके नाममे अन्तर है।

श्री सुपार्श्वनाथकी टोकका नाम प्रभास है। श्री शांतिनाथ की कूटके नाम भी प्रभास है। दोनोंका एक नाम रहना शक्य है। तथापि हमने मराठी, हिंदी, कन्नडमे प्रकाशित सम्मेदशिखर पूजाको मंगवाई। उसमे शांतिनाथ तीर्थंकरकी कूटका नाम शांतिप्रभ लिखा गया है। प्रभास और शांतिप्रभमे कोई अन्तर नहीं है। व शांतिप्रभ हो सकता है। एक कन्नड ग्रन्थमे जो हिंदीका ही रूपांतर है, इस कूटका नाम शांतिकूट या कुन्दकूट लिखा गया है।

विमल तीर्थंकरकी कूटका नाम संकुल है। एवं हिंदी प्रतिमे संकूलकूट है। और हस्तलिखित प्रतिमे वीरसंकुल कहा गया है। क्योंकि संकुलकूट श्रेयांस नाथका है। कन्नड प्रतिमे इसे सुवीरकूट कहा गया है।

अनन्तनाथकी कूटमे मराठी पूजनमे स्वयंभू लिखा गया है, हिंदी पूजनमे स्वयंप्रभु लिखा गया है। और हस्तलिखित प्रतिमे स्वयंभू कहा गया है। इसमे कोई अन्तर नही है

धर्मनाथ तीर्थंकरकी कूटमे सुदत्तवर मराठी, हिंदीमे लिखे गए हैं। हस्तलिखित क० प्रतिमे अध्यायके अन्तमे दत्तधवल लिखा गया है। परन्तु श्लोकमे दत्तवर लिखा गया है। इसलिए सुदत्तवर ही ठीक मालूम होता है, क्योंकि दत्तधवल कूटका पहिले उल्लेख आया है।

अरतीर्थंकरकी कूटमे नाटक कूटका नाम किसीमें संबल लिखा गया है जब कि मल्लितीर्थंकरकी मांकुलकूटका नाम मुद्रित लिखित क० प्रतिमे संबल दिया गया है। हमारे ख्यालमे मांकुल ही ठीक है। क्योंकि संबलकूट विमल तीर्थंकरकी है। जब कि एक पुस्तकमे विमलतीर्थंकरका कूट सांकूल मिला। कन्नड प्रतिमे इसे सुवीरकूट कहा गया है।

कूटके नाममे अन्तर भले ही हो गया हो, हमे नाममे विवाद नहीं है। उन कूटोंसे असंख्य सिद्ध शुक्लध्यानके बलसे मुक्तिको गए हैं, यही अभिप्राय हमे लेना है।

कन्नड प्रतिमे जैसे कूट मिलते हैं उसी प्रकार क्रमसे उस तीर्थंकरका कूट लिखा गया है।

श्लोकोंका हमने भावमात्र किया है। शब्दशः अर्थ करनेके काममे गए नहीं है।

इस प्रकार यह पावन ग्रंथ आपके सामने है। अन्त निवेदन है कि इसके अनुवादमे संस्कृतके शुद्धिमे या और प्रकार अशुद्धि हो तो हमे सूचित करें ताकि आगामी आवृत्तिमे उस संशोधन किया जाय।

इसमे जो अच्छाई नजर आती है वह मूल ग्रन्थकारको दी जाय और बुराई जो नजर आती है वह मुझे दे दी जाय। क्योंकि वह मेरी गलतीसे ही हुई हैं। यह लोकमे प्रसिद्ध है कि--

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः
हसंतु दुर्जनास्तत्र समादधतु सज्जनाः ॥

वदुपामनुचरः

**वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री**

# प्रकाशकका परिचय.

इस ग्रंथका २००० प्रतियोंका प्रकाशन स्व. सेठ चांदमलजी सरावगीके भावनाके अनुसार हो रहा है । स्व. सेठ चांदमलजी सरावगसे जैन समाज अपरिचित नही है। मरुप्रदेश (राजस्थान) के लालगढ कस्बेमें ३ जनवरी १९१२ को सेठ चांदमलजीका जन्म हुआ था । श्री सरावगीजीका बचपन तथा छात्रकाल कलकत्तामें बीता, जहांके विश्वविद्यालयसे उन्होंने १९३० में मैट्रिक्युलेशन किया था । नेतृत्व और समाज-सेवाके गुणोंका प्रदर्शन उनमें तभीसे होने लगा था, जब कि वे स्कूल जीवनमें ही छात्र आंदोलनमें भाग लेने लगे और ब्रिटिश झण्डे-युनियन जेकका अपमान करनेपर गिरफ्तार किये गये । मैट्रिकतक शिक्षा प्राप्त करनेके बाद श्री सरावगीजीने तत्कालीन विख्यात फर्म सालगराम राय चुनीलाल बहादुर एण्ड कंपनीमे व्यावसायिक जीवन आरंभ किया था ।

उनके समाजके प्रति भावनाको शीघ्र ही मान्यता मिलने लगी, जब कि उन्हे अनेको बार गोहाटी नगरपालिकाका पार्षद निर्वाचित किया गया ।

श्री सरावगीजी सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक संस्थाको मुक्त हस्तसे दान देनेमे अग्रणी रहे थे । डॉ० बी. बरुआ कॅसर इन्स्टिट्यूट, गोहाटी, कुष्टरोग चिकित्सालय, यक्ष्मा चिकित्सालय शिलांग, वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली. गुरुकुल कुंभोज (महाराष्ट्र) कुन्दकुन्द विद्यापीठ हुमच (कर्नाटक), बंद्रावा स्मृति समिति

आपकी उल्लेखनीय सेवाओंके उपलक्ष्यमें समाजने कृतज्ञता-पूर्वक आपका सम्मान किया है। अनेक गौरवपूर्ण उपाधियोंको प्रदान कर आपको विविध स्थानोंमें मानपत्र अर्पण किया है। दक्षिण भारत व उत्तर भारतके प्रमुख स्थानोंमें आपको अभिनंदन-पत्र समर्पण कर आपका आदर किया है। आपका जीवन सामाजिक व धार्मिक संस्थाओंके लिए जीवदान देनेवाला सिद्ध हुआ है।

–वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री.

प्रतिष्ठायें हुई । प्रतिष्ठाके समय तदन्तर्गत विधियोंको भाविकजनोंको समझाना यह आपकी ही विशेषता है ।

सुंदरलेखक व प्रभावकवक्ता-- श्री शास्त्रीजी कन्नड, हिंदी, मराठी आदि भाषाओंके जिस प्रकार सफल लेखक हैं, उसी प्रकार वे उन भाषाओंके प्रभावक वक्ता भी हैं । आपको भारतागत सर्व प्रांतोंमे बुलाकर हजारों लोग आपके भाषणोंको मन्त्रमुग्धवत् सुनते हैं । इसका अनुभव दक्षिणोत्तर भारतकी जनताको प्राप्त हुआ है । इतना ही नहीं जैनेतर समाजमे भी शास्त्रीजीको आव्हानित करते हैं । अनेक सर्वधर्मसम्मेलनोमे आपको जैनधर्मके प्रतिनिधित्वको स्वीकृत करनेका अवसर प्राप्त हुआ है ।

श्री शास्त्रीजी वर्तमान युगके एक निष्ठावन्त कार्यकर्ता हैं । इतना ही नहीं सर्वपक्षीय समन्वयकी दृष्टिसे वे धार्मिकनेतृत्व करते हैं । इसलिए आज समाजके सर्ववर्गोंमे आपके सम्बन्धमे परम आदर है ।

साहित्यजगत्की सेवा

श्री आचार्य कुन्थुसागर ग्रन्थमालाके माध्यमसे आपने करीब ५० ग्रन्थोंका सम्पादन कर प्रकाशित किया है । तत्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार सदृश महान दार्शनिक ग्रन्थके छह खण्ड आपके सम्पादकत्वमे प्रकाशित हुआ है । सातवा खण्ड भी शीघ्र प्रकाशित होगा । प्रारम्भकालसे ही इस संस्थाके आप मन्त्री व ट्रस्टी हैं ।

उनके द्वारा लिखित अनेक सत्साहित्य अभी प्रकाशनके मार्गमे हैं । सम्मेदशिखर माहात्म्य, इन्द्रनन्दीसंहिता, महावीरचरित्र हिंदी व कन्नड मुनिश्री उपाध्याय विद्यानन्द चरित्र आदि ग्रन्थोंका उन्होंने सम्पादन व लेखन किया है ।

आपके द्वारा लिखित अगणित लेख विभिन्न विषयोमे लिखित विभिन्न पत्रोमे प्रकाशित हुए हैं एवं होते रहते हैं । घरके स्वतन्त्र व्यवसायको सम्हालते हुए आप अनेक संस्थाओंकी एवं समाजकी सेवा करते हैं यह आपकी विशेषता है ।

### ग्रन्थोंके सम्पादन

इसके अलावा अनेक ग्रन्थोंका आपने संपादन किया है। तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकालंकार जो महर्षि विद्यानन्द स्वामीका महत्वपूर्ण ग्रन्थ है उसका संपादन श्री शास्त्रीजीने किया है। इसी प्रकार अनेक छोटे मोटे ग्रन्थोंका आपने सम्पादन किया है।

इसके अलावा सामाजिक कार्योंमे भाग लेते हैं। उनकी विविध सामाजिक सेवायें प्रसिद्ध हैं। वे समन्वयवादी विद्वान् हैं।

शांतिसुधा--आचार्यरत्न देशभूषण महाराजके नेतृत्वमे इस दीपावलीसे निकल रहा है। विश्वमे शांति होनी चाहिये, शांतिका संदेश विश्व को देनेके लिए ही आचार्यश्री उक्त शांतिसुधाको निकाल रहे हैं। इसका प्रधान संपादक श्री विद्यावाचस्पति पं. वर्धमान शास्त्रीको आचार्यश्रीनें नियत किया है।

इससे श्री शास्त्रींजी कई पत्रोंका संपादन कर रहे है उनका समय किस प्रकार व्यतीत होता होगा इसे सहज अनुमान कर सकते हैं।

### सार्वजनिक सेवा

आप कई वर्षोतक कर्नाटक यूनिफिकेशन लीगके प्रधान मंत्री पद पर रहे. आपके ही सतत प्रयत्नसे भाषावार प्रांतरचना हुई है। सी प्रकार सोलापूरमे नवरात्र महोत्सवको प्रारंभ करनेका श्रेय आपको ही है। आपकी विद्वत्तापूर्ण तत्वविवेचनको जैन अजैन सुनने के लिए लालायित रहते हैं।

इस प्रकार आपके द्वारा शैक्षणिक, साहित्यिक, सामाजिक, एवं धार्मिक क्षेत्रमे अगणित सेवायें हुई हैं। बालजीवनसे ही सामाजिक व सार्वजनिक सेवाके प्रति आपके हृदयमे अपारभक्ति रही है। ६९ वर्षकी आयुमे भी युवकोचित उत्साहसे वे कार्य करते हैं। समग्र दक्षिण भारतमे आज उनके द्वारा संपादित साप्ताहिक पत्रसे मार्गदर्शन होता है। इसलिए समाजमे उनका सुन्दर प्रभाव है।

सामाजिकसन्मान–आपकी विविध सेवावोंके उपलक्ष्यमे समग्र भारतके जैनसमाजने आपका सन्मान किया है। आपकी विद्वत्ता प्रेरित होकर आपको विविध उपाधियोंसे विभूषित किया है।

विद्यावाचस्पति ( शाहपुरा शास्त्रार्थ ), व्याख्यानकेसरी ( गुजरात-सूरत ), धर्मालंकार ( सुजानगढ–राजस्थान ), समाजरत्न ( वाग्वर–प्रांत ), विद्यालंकार बेळगांव–कर्नाटक ) सिद्धांताचार्य ( वीर निर्वाणभारती ), पंडितरत्न ( अ. भा. दि. जैन शास्त्री–परिषत् ) श्रावकशिरोमणि ( जैनक्लब देहली ) उपाधियोंसे आपको भारतके विविध प्रांतके समाजने अलंकृत कर कृतज्ञता व्यक्त की है।

अनेक स्थानोंके समाजने सम्मानपत्र समर्पण कर आदर व्यक्त किया है। जिनका उल्लेख मात्र यहां किया जाता है।

शाहपुरा–राजस्थान (१९२९) अजमेर (१९३२) सोलापूर (१९५५) बिलिचोड–दावणगेरे (१९५७) बंबई (१९५८) सुजानगढ १९५९ हुमच (कर्नाटक) भींमपुर–राजस्थान, (१९६०) बांसवाडा (१९६१) बागलकोट (१९६१) शिरडशहापूर (१९६३) हैद्राबाद (१९६४) बेळगांव (१९६५) रांची–बिहार (१९६५) कलकत्ता (१९६६) होसदुर्ग–मैसोर (१९६९) गोहाटी–आसाम ( १९६९ ) के स्थानीय समाजने आपको आमन्त्रित कर आपकें प्रवचनोंको बडी

दिलचस्पीसे सुना एवं आपके प्रवचनोंसे प्रभावित होकर आपके प्रति हार्दिक समादर व्यक्त करते हुए सम्मानपत्र समर्पण किया है।

इस प्रकार बहुमुखी प्रतिभाके विद्वान्‌को पाकर दक्षिण भारत ही नहीं उत्तर भारत भी अपनेको गौरवान्वित मानता है। आपके द्वारा समाजके विविध अंगोंकी सेवायें हो रही हैं। आपको परमपूज्य समस्त साधुवर्गका आशीर्वाद प्राप्त है।

## राजधानीमें सन्मान

भारतकी राजधानी दिल्ली में १० दिनोंतक परेडग्राऊंडमे शास्त्रीजीका व्याख्यान होता रहा। प्राचीन अग्रवाल पंचायतने दिल्लीके महापौर श्री केदारनाथजी सहानी के हाथसे मुनि श्री विद्यानन्दजी के सान्निध्यमे शास्त्रीजीका शाही सन्मान हुआ। उस समय आपको चन्दनकी मालाके साथ अभिनन्दनपत्र भी समर्पण किया गया। प्रशस्तिपत्रमे आपको ५०१) की थैलीको समर्पण किया गया। साथमे सुवर्णपदकमे अंकित " सिद्धांताचार्य " पदवी के साथ २ प्रशस्तिपत्र वीरनिर्वाण भारती की ओरसे दिया गया। उस समय केदारनाथजी सहानी का भाषण शास्त्रीजीके गौरवके संबंधमे हुआ। मुनिश्री विद्यानन्दजीका भी आशीर्वादात्मक भाषण हुआ। शास्त्रीजीने लघुता व्यक्त की।

## श्रावकशिरोमणिकी उपाधि

दोबारे वर्ष भी दिल्लीमे आपको बुलाया था। परेडग्राऊंडमे आपका भाषण हुआ। एक दिन जैन क्लबमे आपका भाषण आधुनिक शिक्षितोंमें " जैनधर्मका प्रचार " इस विषयपर हुआ। जनता मन्त्रमुग्धवत् सुनती रही। अन्तमे जैन क्लबके सेक्रेटरीने रजतपट पर अंकित " श्रावकशिरोमणि " उपाधिसे विभूषित किया।

रा. सा. चांदमलजी सरावगी गौहाटी

# श्रीसम्मेदशैलमाहात्म्यम्

# श्रीसम्मेदशिखरमहिमा

भावार्थः- जिनके चरण कमलोंका चिंतवन करके भव्यगण संसारसे पार हो जाते हैं, लोकमें जो सर्वोत्कृष्ट हैं और लोकके आधार भूत हैं ऐसे अर्हत भगवान् को मैं नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ गुरुगणधर, और सरस्वती का ध्यानकर तथा स्तुति व प्रणामकर सम्मेदशिखरमाहात्म्य मेरे द्वारा प्रकट किया जाता है ॥ २ ॥ यतिधर्मपरायण जिनेंद्रभूषण नामक मुनिराजके उपदेशसे इस सम्मेदशैलमाहात्म्यके कथनमें मेरी वाणी उत्सुक हुई है, भट्टारकपदमें स्थित मैं संसार समुद्रसे पार करनेके लिए सत्कथारूपी जहाजपर चढकर इस कार्यकी पूर्तिके लिए सिद्धशिलामें विराजमान सिद्धसमूहकी वंदना कर भावना करता हूं कि वे मेरी काव्यरूपिणी वाणीको पवित्र करें ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ सम्मेदशैलका वृत्त भगवान् महावीरने गौतम गणधर के प्रति कहा, गौतम गणधर की परंपरासे उनके कथन के अनुसार लोहाचार्य के द्वारा देवदत्त को कहा गया, उस देवदत्त के द्वारा यह सम्मेदशिखरमाहात्म्य अब प्रकट किया जाता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ उस उत्तम पर्वतपर वीस कूट हैं, उन कूटोंसे सिद्ध हुए सिद्धात्मावोंको एवं उन कूटोंपर तपश्चर्याकर मुक्तिको पानेवाले तीर्थंकरोंकी मैं सदा वंदना करता हूं ॥ ८ ॥ अजितनाथको आदि लेकर वीस तीर्थंकरोंको हृदयमें ध्यानकर उनके द्वारा पुनीत अलग२ कूटोंके नामका प्रतिपादन करूंगा ॥ ९ ॥ जिस भगवंतने जिस कूटसे सिद्ध गतिको प्राप्त किया है वह कूट उसी तीर्थंकर के नामसे प्रसिद्ध हैं, इसलिए उनके नामसे उस कूटका भी कथन किया जाता है अर्थात् उन तीर्थंकरोंके नामसे वह कूट प्रसिद्ध है ॥ १० ॥

अजितेशस्य यः कूटः स सिद्धवर उच्यते ।
दत्तांतधवलस्तात्र्छंभनस्य निकुंभाः ॥ ११ ॥
अभिनन्दनकूटो यः स आनंद इतीरितः ।
सुमतीशस्याविचलः सदाचलरमालगः ॥ १२ ॥
पद्मप्रभाभिधानस्य मोहनो नाम कीर्त्यते ।
सुपार्श्वनाथस्य तथा प्रभाकूटः समिष्यते ॥ १३ ॥
चन्द्रप्रभस्य ललितघटनाम्ना स वर्णितः ।
सुप्रभः पुष्पदन्तस्य विद्युतः शीतलस्य च ॥ १४ ॥
श्रेयांसः संकुलस्तद्वद्विमलो वीरसंकुलः ।
अनन्तस्य स्वयंभूश्च धार्म्यो दत्तवरस्तथा ॥ १५ ॥
प्रभासो शान्तिनाथस्य कौन्योर्ज्ञानधरः स्मृतः ।
नाटकश्चारनाथस्य मल्लिनाथस्य सम्बलः ॥ १६ ॥
मुनिसूव्रतकूटस्य निर्जराख्यः स्मृतो बुधैः ।
सुप्रभासो नमेः कूटः सुभद्रः पार्श्वकप्रभोः ॥ १७ ॥
विंशकूटा इमे नित्यं ध्येयाः सम्मेदभूभृतः ।
स्वस्वस्वामिसमायुक्ता ध्यानात्सर्वार्थसिद्धिदाः ॥ १८ ॥
इदानीं चालितस्संघो यैः पूर्वं भव्यसाधुभिः ।
तेषां नामानि वक्ष्येहं श्रृणुताखिलसज्जनाः ॥ १९ ॥
प्रथमः सगरः प्रोक्तो मघवा च ततः परं ।
सनत्कुमार आनंदः प्रभाश्रेणिक ईरितः ॥ २० ॥
जोतको ललितादिश्च दत्तो कुंदप्रभस्तथा ।
शुभश्रेणिकदत्तादि [1]धरो सोमप्रभस्ततः ॥ २१ ॥
तथाविचल आख्यात आनंदश्रेणिकस्तथा ।
सुप्रभश्च ततश्चारु श्रेणिको भावदत्तकः ॥ २२ ॥
सुंदरो रामचंद्रश्चामरश्रेणिक उच्यते ।
सुवरांता इमे भव्या संघाधिपतयः स्मृताः ॥ २३ ॥

---

१ वरो इति क. पुस्तके मु. चरो इति

भगवान् अजितनाथ सिद्धवरकूटसे, संभवनाथ धवलदत्तकूटसे, अभिनंदन-भगवान् आनंदकूटसे, सुमतितीर्थंकर अविचल लक्ष्मीसे युक्त अविचलकूटसे। पद्मप्रभभगवान् मोहनकूटसे, सुपार्श्वनाथ प्रभासकूटसे, चंद्रप्रभ भगवान ललितघटकूटसे, पुष्पदंत भगवान् सुप्रभकूटसे, शीतलनाथ विद्युतकूटसे, श्रेयांसनाथ संकुलकूटसे, विमलनाथ भगवान् वीरसंकुलकूटसे, अनंतनाथ भगवान् स्वयंभूकूटसे, धर्मतीर्थंकर सुदत्तवरकूटसे, शांतिनाथ भगवान् प्रभासकूटसे, कुंथुनाथस्वामी ज्ञानधरकूटसे, अर जिनेश्वर नाटक-कूटसे, मल्लिनाथ भगवान् संबलकूटसे, मुनिसुव्रत तीर्थंकर निर्जरकूटसे, नमिनाथ भगवान् मित्रधरकूटसे, एवं पार्श्वनाथ भगवान् सुवर्णभद्र-कूटसे सिद्धधामको प्राप्त हुए (इस प्रकार भगवान् महावीरने दिव्य ध्वनिसे प्रगट किया) ॥ ११-१७ ॥ इस सम्मेदाचलके २० पावन-कूटोंका उन अजितादि तीर्थंकरोंके साथ जो दर्शन, वंदना, ध्यान आदि करता है उसे सर्वार्थसिद्धिकी प्राप्ति होती है ॥ १८ ॥ पूर्व कालमें अनेक भव्य सज्जनोंके द्वारा संघ चलाकर तीर्थयात्रा की गई, उनका परिचय मैं कहता हूं, सज्जन लोग उसे सुनें ॥ १९ ॥ सबसे पहिले सगरचक्रवर्ति, नंतर मघवान्, तदनंतर सनत्कुमार, आनंद, प्रभाश्रेणिक, श्रोतक, ललितदत्त, कुंदप्रभ, शुभश्रेणिक, दत्तवर, सोमप्रभ, अविचल, आनंदश्रेणिक, सुप्रभ, चारश्रेणिक, भावदत्त, सुंदर, रामचंद्र, श्रेणिक आदि अनेक चक्रवर्ति संघपति होकर यात्रार्थ आये ॥ २०-२३ ॥

एक-एक कूटसे अनंतसिद्ध मुक्तिको गये हैं, अतः यह समग्रपर्वत पवित्र है अथवा १२ योजन विस्तारसे वह युक्त है, भव्य ही इसकी यात्रा कर सकते है अभव्य नहीं कर सकते हैं, भव्य मुक्त होनेवाले हैं, अभव्य मुक्त नहीं होते हैं ॥ २४-२६ ॥ इस प्रकार केवलज्ञानधारक केवली मुनियोंने कहा है। भव्यराशीमें रहनेवाले कितने ही पापी जीव क्यों न हो वह (भावपूर्वक वंदना करनेपर) उनंचास भवोंके भीतर अवश्य मुक्तिको प्राप्त होते हैं। एकेंद्रियसे लेकर पचेंद्रियतक के जीव जो अनेक नाम व आकृतिसे युक्त हैं, इस पावन भूमिमें यदि उत्पन्न है, तो

[illegible] ।
[illegible] ॥ २८ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ २९ ॥
तथैव जीवसंसारे ये भव्याः [illegible] ।
[illegible] ॥ ३० ॥
उद्धारका स्वसंघस्य प्रभुता याश्रिताः पुरा ।
तत्पूजका तदाख्यांकथा तान्वदे श्रृणुताधुना ॥ ३१ ॥
सगरेण कृता पूर्वं यात्रैषा चक्रवर्तिना ।
भरतेन तथा भक्त्या सिद्धानंदरतोप्यमुना ॥ ३२ ॥
ततो यतीनामार्याणां श्रावकाणां ततः पुनः ।
श्राविकाणां च सन्मानं कृत्वा श्रेणिकभूपतिः ॥ ३६ ॥
महावीरं स पप्रच्छ महावीर दयानिधे ।
सम्मेदयात्रा भावोद्य वृद्धो मम हृदि ध्रुवं ॥ ३४ ॥
अब्रवीत्तं महावीरः श्रुणु श्रेणिकभूपते ! ।
यात्राकालोधुना तेन मया संवीक्ष्मतेऽशुभः ॥ ३५ ॥
प्रथमे नरके स्थानं निश्चयात्ते भविष्यति ।
श्रुत्वा प्रीतिप्रभोर्वाक्यं सोत्कंठवशतो नृपः ॥ ३६ ॥

समझना चाहिये कि वे सब भव्य हैं, अभव्योंका जन्म इस स्थानमें नहीं हो सकता है ॥ २६-२७-२८ ॥ खारी खानमें खारे जल हैं मीठी खानको खोदनेपर उसमें मीठा ही पानी मिलेगा, खार नहीं, रत्नोंकी खानको खोदनेपर रत्नोंकी प्राप्ति होगी, इसी प्रकार सम्मेदशिखरमें जन्म लेनेवाले जितने भी जीव हैं वे सभी भव्य ही हैं, अभव्य नहीं ॥ २९-३० ॥ इस तीर्थराजकी यात्रा संघके साथ करके जिन्होंने अपने तनका उद्धार किया और पूजा वंदना आदिसे अपने जन्मको सार्थक किया ऐसे महापुरुषोंकी कथा कहता हूं, उसे अब सुनियेगा ॥ ३१ ॥

सबसे पहिले विद्यानंदराजके प्यारा भरतेशके द्वारा इस पावन तीर्थराजकी यात्रा की गई है। उसने भक्तिसे वंदना की। तथा भरतचक्रवर्तिने भी यह पावन यात्रा की है। इसे सुनकर श्रेणिक महाराज बहुत ही आनंदित हुए। और मुनिआर्यिका, श्रावक श्रावि-काओं चतुर्विधसंघका यथेष्ट सम्मान करके भगवान् महावीरसे सविनय प्रश्न किया कि दयानिधि भगवन्! मेरे हृदयमें आज सम्मेदशिखरकी यात्रा करनेका भाव बहुत बढ़कर उत्पन्न हुआ है। अतः मुझे उस भावको प्राप्त करनेका आशीर्वाद प्राप्त हो भगवन्! इस प्रार्थनाको सुनकर भगवान् महावीरने दिव्यवाणीसे फरमाया कि भो श्रेणिक! सुनो, तुम यात्राका विचार कर रहे हो, परंतु मेरे दिव्यज्ञानमें यह यात्राके लिए अनुकूल काल नहीं है, अशुभ है ॥ ३२-३३-३४-३५ ॥

भो श्रेणिक! तुम्हें निश्चय ही प्रथम नरकमें स्थान मिलेगा अर्थात् अगले भवमें तुम प्रथम नरकमें जाओगे, अतः यह यात्रा नहीं होगी. भगवान् के मुखसे इस वाक्य को सुनकर भी यात्रा करनेकी उत्कंठासे श्रेणिकने यात्रा करनेका प्रयत्न किया। और सम्मेदाचलकी ओर प्रस्थान किया, परंतु सम्मेदाचलपर दस लाख व्यंतरोंके अधिपति, महान् बलशाली भूतक नामक यक्ष है, वह श्रेणिककी इस प्रवृत्तिको देखकर क्रुद्ध हुआ, और भयंकर आंधी चलाकर इसके कार्यमें विघ्न किया

जम्बूद्वीपो महानाम्ना [illegible] ॥ ४२ ॥

सुदर्शनश्च तन्मध्ये [illegible] ।
तत्स्कंधो दशसाहस्र-योजनैर्भूतलेऽमलः ॥ ४३ ॥

भूमेरुपर्यसौ मेरुः तद्धनीन्द्रकृतस्थितिः ।
तुङ्गो नवतिसाहस्र-योजनैस्तुंगतां गतः ॥ ४४ ॥

पट् तत्र कुलशैला स्युः सरितश्च चतुर्दश ।
शून्यं रंध्रैकभागैश्च द्वीपस्य गणितैः क्रमात् ॥ ४५ ॥

एकभागोनपड्विंशत् अधिकैः पंचभिः शतैः ।
योजनैः पट्कलायुक्तैः प्रमितं सर्वतः शुचि ॥ ४६ ॥

भरतक्षेत्रमाख्यातं कर्मस्थलमनुत्तमं ।
शुभाशुभकृतो यत्र सुखिनो दुःखिनस्तथा ॥ ४७ ॥

एकोनविंशतिकला योजनस्य च या कृताः ।
तास्वेव पट्कलाधिक्यं बोध्यन्ते न ततः परं ॥ ४८ ॥

मगधाख्यः तत्र देशो वर्ण्यतेखिलपंडितैः ।
यत्र भांति महारामा मनोहरणतत्पराः ॥ ४९ ॥

इस प्रकारके उपसर्गको देखकर श्रेणिकने अपनी यात्रा रोक दी। तब श्रेणिककी पट्टरानी चेलना महादेवीने कहा कि प्राणनाथ ! केवलज्ञानी महावीर भगवंतका वचन अन्यथा नही हो सकता हैं उन्होंने जो यह कहा है कि आज यात्राका समय नहीं है वह सत्य है ॥ ३६-३७-३८-३९-४० ॥

लोहाचार्य आदिकी परंपराके अनुसार श्रेणिकके वृत्तांतको अब कविके द्वारा कहा जाता है, उसे आप लोग सुनें। इस भूमंडलमें एक लाख योजन विस्तारवाला वृत्ताकार एक जंबूद्वीप नामका द्वीप है, जिसके बीचमें सुदर्शन मेरु है, वह एक लाख योजन ऊंचा है, उसकी जड दस हजार योजन जमीनके नीचे है, और ९० हजार योजन ऊपर है, वह द्वीप समुद्रसे वेष्टित है, द्वीपसे समुद्र द्विगुण विस्तारवाला है, उसमें भरत नामका क्षेत्र है, जिसका विस्तार ५२६ योजन और योजनको उन्नीस भागकर उसके छह भाग करे इतना है, वहां कर्मभूमि है, वहांके जीव शुभाशुभ कर्मके अनुसार सुख-दुःखका अनुभव करते है, अथवा असिमसि आदि कर्मोसे अपना निर्वाह करते हैं। उसमें छह, क्षेत्र हैं, उसमें मगध नामका देश है। जिसका वर्णन समस्त पंडित जन करते हैं, जहांपर अनेक सुंदर उद्यान सौंदर्यसे जनमनको अपहरण करते हैं, इन बगीचोमें आम, बिजौरा, केले, आदि अनेक वृक्ष फूलते फलते हैं एवं पक्षियोंके कलकलरवसे युक्त होकर शोभा को प्राप्त हो रहे है ॥ ४१-५० ॥

उस देशमें राजगृह नामका उत्तम नगर है, जो १२ योजन लंबा और ९ योजन चौडा है ॥ ५१ ॥ उस नगर या राज्यका अधिपति श्रेणिक नामा राजा हुआ, उसकी रानी रूपयौवन संपन्न चेलिनी नामकी थी, वह सर्व लक्षणोंसे युक्त, शील संयमादिगुणोंसे मंडित, धर्मशील, पवित्र शरीरसे युक्त, गुणोंसे सबके चित्तको अपहरण करनेवाली थी, श्रेणिक राजाका यश शुभ्र व लोकमे प्रसिद्ध था, जिसका वर्णन कवियोने ग्रंथोमें किया है ॥ ५२-५३-५४ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ ५५ ॥

श्रीफला १, [illegible] ।
[illegible] ॥ ५६ ॥

तिलकाः कोविदाराश्च देवदारुद्रुमाः शुभाः ।
तमालाश्चंपकाश्चैव बकुलाः कल्पद्रुमाः ॥ ५७ ॥

नारिकेलादयस्तद्वन् बहवो भूरुहोत्तमाः ।
बभुः सर्वर्तुफलदाः स्निग्धच्छायाहृतातपाः ॥ ५८ ॥

स्थलपंकजमालाश्च माल्यो यूथिकास्तथा ।
केतकादिसमायुक्ता नृपारामा मनोहराः ॥ ५९ ॥

नानापुष्पसुगंधाढ्याः सुधास्वादफलात्मकाः ।
मालाकारप्रयत्नैश्च वर्धितास्ते सदा बभुः ॥ ६० ॥

कूपाः समुद्रगंभीरा वापिकाश्च तथैव हि ।
विहंगपथिकोत्कृष्ट-तृषातपविनाशिकाः ॥ ६१ ॥

---

१. मु. बिल्व इति.

राजगृह नगरके अंदर व बाहर अनेक बगीचे शोभाको प्राप्त हो रहे हैं, जिनमें आम, बिजौरा, निंबू, श्रीफल (बिल्व), दाडिम, केला, खजूर, शाल, ताल, पनस, तिलक, कोविदारू, देवदारू, तमाल, चंपक, बकुल, क्रमुक, नारियल, आदि बहुतसे वृक्ष सर्व ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले फलोंके साथ युक्त होते हुए एवं शीतल छायासे संयुक्त होकर विराजमान हैं! इसी प्रकार स्थलकमल, मालती, केतकी आदि पुष्पोंके सुगंधसे वह बगीचा सदा महक रहा है। जहां समुद्रके समान गंभीर कूपोंसे, विशाल सरोवरोंसे प्राप्त पानीसे पशुपक्षी, व पथिक तृषाको शांत कर तृप्त हो रहे हैं, स्वच्छ जलसे परिपूरित अनेक सरोवर हैं, जहां हजारों कमल प्रफुल्लित होते हैं, जिनपर भ्रमर गुंजायमानकर शब्द कर रहे हैं, एवं वे सरोवर जलचर प्राणी, जलपक्षी, मछली, आदिकी क्रीडाओंसे उछलनेके कारण नगरके बाहर शोभाको प्राप्त हो रहे हैं ॥ ५५-५६-५७-५८-५९-६०-६१-६२-६३ ॥

नगरका परकोटा अत्यंत उन्नत है, अपने शिखरोंसे आकाशको स्पर्श कर रहा हो ऐसा प्रतीत हो रहा है, वहांके नगरवासी बडे बडे श्रीमंत थे, अतः उनके महल भी उन्नत थे, वे बुद्धिमान् व, गुणवान् थे, अपने कर्तव्य पालनमें दक्ष थे ॥ ६४-६५ ॥

उस नगरमें सुंदरआकारको धारण करनेवाली सुंदरी स्त्रियां शरत्कालके चंद्रबिंबके समान मुखको धारण करती हुई अनेकगुणशीलोंसे संपन्न थीं ॥ ६६ ॥ श्रेणिक व चेलनाके भाग्यशाली दो पुत्र थे, एक का नाम अभयकुमार दूसरेका नाम वारिषेण था ॥६७॥ बडा पुत्र अभयकुमार न्यायनिष्ठ था और वारिषेण तपोनिष्ठ था, सूर्य-चंद्रके समान स्थित दोनों पुत्रोंसे वे सुशोभित होते थे ॥६८ उस राज-गृहके वनमें पांच सुंदर पर्वत थे, १ विपुलाचल, २ विभार, ३ रत्नाचल, ४ चूलगिरी, ५ हेमाचल, इसप्रकार पांच पर्वत हैं। ये पर्वत जंबूद्वीपमें प्रसिद्ध हैं, उनमें जो विपुलाचल है, उसपर एकबार भगवान् महावीरका समवशरण आया, जिसका अब वर्णन किया जाता है, वह समवसरण एक योजन लंबा व चौडा है। ६९-७०-७१-७२ ॥

तडागा महदाकारा गंभीरजलपूरिताः ।
प्रफुल्लनानाकमला गुंजद्भ्रमरमण्डिताः ॥ ६२ ॥
जलचारिविहंगैश्च पुलिनैः कृतकेलयः ।
उच्चलज्जलपशोभाढ्याः राजंते स्म पुराद्बहिः ॥ ६३ ॥
प्राकारो भूपतेस्तुंगः तत्र भातिस्म वाद्भुतः ।
शिखरैः स्वैर्यं आकाशं स्पृशन्निव महोज्वलः ॥ ६४ ॥
उच्चहर्म्यसमुद्दीप्यत् पुरे यत्र महाधनाः ।
पौराः प्रवीणा गुणिनः स्वधर्मनिपुणा बभुः ॥ ६५ ॥
सुंदर्यः सुंदराकाराः शरद्विधुनिभाननाः ।
गुणलक्षणसंपन्ना विरेजुर्यत्र निर्मलाः ॥ ६६ ॥
तयोस्तत्र सुतावास्तां यौ द्वौ सद्भाग्यशालिनौ ।
एकोऽभयकुमारोन्यो वारिषेणः शुभाकृतिः ॥ ६७ ॥
ज्येष्ठो न्यायप्रवीणोऽभूत्तदन्यस्तापसोत्तमः ।
द्वाभ्यां स शुशुभे सूर्यचंद्राभ्यामिव संततं ॥ ६८ ॥
वने राजगृहस्यासन् उज्वलाः पंचपर्वताः ।
विपुलाचलनामैको विभावाख्यो द्वितीयकः ॥ ६९ ॥
रत्नाचलः तृतीयश्च चतुर्थश्चूलपर्वतः ।
हेमाचलः पंचमश्च पंचेमे पर्वताः स्मृताः ॥ ७० ॥
जंबूद्वीपे प्रसिद्धास्ते तेषां यो विपुलाचलः ।
प्रभोः समवसारश्रीः महावीरस्य तत्र वै ॥ ७१ ॥
समायाता कदाचित्तद्वर्णनं क्रियतेऽधुना ।
एकयोजनमानेन लंबोभूदायतस्तथा ॥ ७२ ॥
प्रथमं धूलिसालोस्ति ततः सालत्रयं स्मृतं ।
तद्वृत्तं धूलिसालस्तु रत्नरेणुमयो मतः ॥ ७३ ॥
तस्मात्प्रथमसालस्तु[१] जांबूनदविनिर्मितः ।
ततो रूप्यमयो ज्ञेयो द्वितीयः साल उत्तमः ॥ ७४ ॥

---

१. मालोस्ति इति क. पुस्तके.

सबसे पहिले धूलिसाल नामक प्राकार है, तदनंतर तीन धूलिसाल प्राकार हैं, वह वृत्ताकार हैं, और वह धूलिसाल रत्नमय है ॥ ७३ ॥ धूलिसाल सुवर्णके द्वारा निर्मित है दूसरा प्राकार चांदीके द्वारा निर्मित है, तीसरा स्फटिकका है और अनेक रत्नोंसे संयुक्त है, धूलीसालके अंतरमें चारो दिशावोमें सुवर्णके द्वारा निर्मित चार मानस्तंभ हैं. उसके पास ही जलकुंड है, वे चार दिशावोमें चार सरोवरके समान शोभित हो रहे हैं। त्रिमेखलासे युक्त वे मानस्तम्भ चारों दिशावोमें स्थित होकर मानी लोगोंके मानको अपहरण करते हैं उन मानस्तंभों-पर चार चार सिद्धबिंब विराजमान हैं। पहिला प्राकार जो सुवर्णमय है उसके बाहर एक खाई है, उसके अंदर सुंदर बगीचा है, जहां अनेक जातिके पुष्प प्रफुल्लित होकर शोभाको प्राप्त हो रहे हैं। उसके बीचमें यह स्वर्णप्राकार बहुत ही मनोहर दीखता है, जिससे चारों द्वारपर मंगल द्रव्योंका संचय दिख रहा है ॥ ७४-७५-७६-७७-७८-७९-८० ॥

उससे प्रत्येक द्वारपर दो दो नाट्यशालयें हैं, उसके पास ही बगीचा व विचित्र वेदिका है, उसपर अनेक ध्वजादिक मंगल द्रव्य हैं, इसी प्रकार आगेके सर्व प्राकारोंमें व्यवस्था समझनी चाहिये, उन प्राकारोंके बीच कल्पवृक्षोंका वन है. उनमें अनेक स्तूप हैं, जिनपर सिद्ध बिंब विराजमान हैं, उसी प्रकार अनेक महलके समूह हैं जो देवतावोंके लिए क्रीडास्थान है, जहां देवगण अनेक प्रकारकी क्रीडा करते हुए घूमते रहते हैं ॥ ८०-८५ ॥

आगेका स्फाटिक प्राकार भी इसी प्रकार है, कुछ विशेष है वह संक्षेपसे कहा जाता है। इस बीचमें १२ कोष्ठ बने हुए हैं। वे कोष्ठ बहुत विस्तृत, शुभ सुंदर हैं, उन कोष्ठोमें जो रहते हैं उनके संबंधमे अब कहता हूं ॥ ८६-८७ ॥ उनमें सबसे पहिले कोठेमें गणधर व मुनीश्वर रहते हैं, दूसरे कोठेमें कल्पवासिनी देवियां रहती हैं, तीसरे कोठेमें आर्यिकायें रहती हैं, चौथे कोठेमें ज्योतिष्क देवियां,

पांचवेमें व्यंतर देवियां, छठेमें भवनवासी देवियां, सातवेमें भवनवासी देव, आठवेमें व्यंतर देव, नवमें कोठेमें ज्योतिष्क देव, दसवें कोठेमें कल्पवासी देव, ११ वे कोठेमें मनुष्य एवं बारहवें कोठेमें तिर्यंच, इस प्रकार १२ कोष्ठोंकी व्यवस्था है, जहां अपने अपने अधिकारके स्थानपर बैठकर भव्यजन भगवान्के दर्शन करनेमें उत्सुक रहते हैं ॥ ८८-८९-९०-९१ ॥

उसके आगे श्रीमंडप है, जो अनेक जातिके रत्नोंसे निर्मित है, उसके बीचोबीच अत्यंत सुंदर त्रिमेखलापीठ है, उसके ऊपर चार अंगुल छोडकर अंतरालपर दयानिधि भगवान् महावीर विराजमान हैं, उनके ऊपर छत्रत्रय, प्रभामंडल एवं चौसठ चामरोंका ढोना आदिके साथ अशोक वृक्षादिक अष्ट महाप्रातिहार्य भी दृग्गोचर हो रहे हैं, भामंडलमें तीन भूत, तीन भविष्य व एक वर्तमान इस प्रकार ७ भवकें दर्शन होते हैं ॥ ९२-९३-९४-९५ ॥

प्रभाकी अधिकतासे वहांपर दिन और रात्रिका भेद ज्ञात नहीं होता है। कहीं देवगण जिनेंद्र प्रतिमाकी पूजा करते हैं, कहीं नृत्य हो रहा है, तो कहीं बाजे बज रहे हैं, कहीं मंगलगान हो रहे है, कहीं साधुवोंके द्वारा जिनगुण संकीर्तन हो रहा है, साडेबारह करोड प्रकारके वाद्य वहांपर बजते हैं, भगवान्के प्रभावसे जहां पंचाश्चर्य सदा होते रहते हैं, वहांपर स्वभावसे परस्पर वैर विरोध रखनेवाले प्राणी भी वैरविरोधको छोडकर सबके सामने बैठे रहते हैं, सिंह व हाथी, व्याघ्र व गाय, बिल्ली व चूहा, मयूर व सर्प इसी प्रकार और भी प्राणी परस्पर वैरको छोडकर एकत्र बैठते हैं, जिनेंद्र भगवंतके प्रभावसे प्रेमसे विहार भी करते हैं ॥ ९६-१०३ ॥

इस प्रकार समवसरणका संक्षेपमें वर्णन किया गया है, विस्तारकी जरूरत हो तो महापुराणमें देखलेवे, भगवान् महावीर जिस विपुलाचलपर पधारे, वहां देवेंद्रने कुबेरको आज्ञा देकर समवसरणकी रचना कराई, जिसमें विराजमान होकर भव्योंको दयाघन प्रभु महावीर धर्मोपदेश प्रदान करते हैं ॥ १०४-१०६ ॥

[illegible] ॥ ९१ ॥

ततः [illegible] ।
[illegible] ॥ ९२ ॥

तस्योपरि [illegible] ।
विराजते स्म [illegible] ॥ ९३ ॥

तस्योपरि प्रभापीठं छत्रत्रयमनुत्तमं ।
चतुःषष्टिप्रमाणौघचामराणां प्रनालकं ॥ ९४ ॥

अशोकादीनि भांतिस्म प्रातिहार्याणि [illegible] ते ।
दृश्यंते सप्तपर्यायाः त्रयो भूतागत भाविनः ॥ ९५ ॥

त्रयस्तथा वर्तमान एक एवमनुक्रमात् ।
प्रभाधिक्येन दिवसो रात्रिर्न ज्ञायते क्वचित् ॥ ९६ ॥

क्वचिज्जिनेंद्रप्रतिमा पूजनं चामरैः कृतम् ।
क्वचिन्नृत्यं क्वचिद्वाद्यं क्वचिन्मंगलमुत्तमम् ॥ ९७ ॥

क्वचित्सतानगानं च क्वचित् दुंदुभिनिस्वनः ।
क्वचिज्जिनगुणग्रामकीर्तनं साधुभिः कृतं ॥ ९८ ॥

सार्धं द्वादशकोट्युक्ता वाद्यभेदाश्च ये स्मृताः ।
नदंति स्वस्वरीत्या ते मंद्र[1]ध्वनिमनोहराः ॥ ९९ ॥

---

१. मृदु इति मु. पुस्तके.

जिनकी उत्कृष्ट कृपाके कारण भव्य जीव इस संसाररूपी समुद्रको पारकर मुक्तिको जाते हैं, उन महापुरुषोंके ध्यानसे ही कर्म-बद्ध भव्यजीव शुद्ध भावको पाकर सिद्धालयको प्राप्त होते हैं, ऐसे वीर भगवान्का आदर करनेवाले धर्म कर्मके आचरण करनेवाले महापुरुष ध्यानसे उत्पन्न केवल ज्ञानके द्वारा सिद्धालयको प्राप्त करते हैं ॥

इस प्रकार दीक्षित देवदत्तकृत
सम्मेदशिखरमाहात्म्यमें
विद्यावाचस्पति पंडितरत्न
वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्रीकृत
भावार्थदीपिकामें

## प्रथम अध्याय

समाप्त हुआ.

# प्रथम अध्याय का सारांश

मंगलाचरण कर ग्रंथकारने सम्मेदशिखर माहात्म्यको प्रति पादन करनेकी प्रतिज्ञा की है। सम्मेदशिखर माहात्म्यको भगवान् महावीरने गणधरको, गणधरने अपने शिष्योंको कहा, क्रमशः लोहाचार्यने उस ज्ञानको प्राप्त किया, लोहाचार्य से देवदत्त सूरिको मिला. देवदत्त सूरिने तदनुसार इस ग्रंथकी रचना की है।

बीस कूटोंसे कौन कौन तीर्थंकर मुक्तिधामको प्राप्त हुए इसका विवेचन किया है, २० कूटोंसे जिन अनंत सिद्धोने सिद्धगति का [ला किया है उनका स्मरण, पूजन वंदन करनेसे सर्वार्थसिद्धिकी प्राप्ति होती है।

सबसे पहिले सगर नंतर मघवान् सनत्कुमार, आनंद, प्रभा, श्रेणिक द्योतक ललित दत्त, कुंदप्रभा, शुभश्रेणिक, दत्तवर, सोमप्रभ, अविचल आनंद श्रेणिक, सुप्रभ, चारुश्रेणिक आदि अनेक राजा संघपति होकर यात्रार्थ गये।

तदनंतर राजगृह व राजगृह के अधिपति श्रेणिकका वर्णन किया है, विपुलाचल पर्वतपर भगवान् महावीर के समवसरण आनेका वृत्तांत है। समवसरण रचनाका विवेचन है। राजा श्रेणिक अपने परिवार के साथ महावीर के समवसरणमें जाता है, और बहुत विनयके साथ भगवान् महावीर की वंदना कर आपने आत्म हितको पूछता है। इस संसारसे तरनेका उपाय क्या है। यह पूछलेता है। यह इस अध्यायका सार है।

# दूसरा अध्याय

भावार्थ:- भगवान् महावीरसे हाथ जोड़कर श्रेणिकने निवेदन किया कि भगवन् ! आप भव्यप्राणियों को मुक्ति देने वाले हैं, शरणागत जीवों को दुःखीजीवों के पालन करनेमें आप श्रेष्ठ हैं। ये संसारी जीव कर्म बंधनसे अनेक योनियों मे भ्रमण करते है, संयमको धारण करने मे असमर्थ हैं, उनको मुक्ति कैसी होगी, इस बातकी मुझे महान् शंका है। प्रभो ! ज्ञानके बिना कर्मनाश नहीं हो सकता है, और उपशमके बिना ज्ञान भी नही हो सकता है, इन दोनोंके बिना संयम व व्रतको भी धारण नहीं करसकते है, उनके प्राप्त होनेपर थोडेसे श्रमसे मुक्तिकी प्राप्ति होसकती है। इसलिए हे प्रभो ! उस मुक्तिके मार्गका उपदेश अवश्य प्रदान करें, इस प्रकार प्रार्थना की, श्रेणिकके उस वचन को सुनकर महावीर प्रभुने कहा, श्रेणिक ! संसारीजीवोंको भी मुक्ति प्राप्त करनेका मार्ग प्रतिपादन किया जाता है सुनो १॥ २॥ ३॥ ४॥ ५॥ ६॥ ७।

सम्मेदशिखरकी यात्रा करने की भावना जिन मनुष्योंने की, जो सर्वार्थसिद्धिदायिका है, उनके हाथमें मुक्ति हैं ऐसा समझो, अर्थात् वे अवश्य मुक्ति जाते हैं। वहांपर सबसे पहिला कूट सिद्धवरनामक है जो अत्युत्तम है। जहांसे भगवान् अजितनाथ मुक्तिको प्राप्त हुए है। सबसे पहिले सगर चक्रवर्तिने इस तीर्थराजकी यात्रा की, हे श्रेणिक उसकी प्रसिद्ध कथाको सुनो ॥८-१०॥

इस जंबूद्वीपमें पूर्व विदेह है, जिसमे रम्य व पवित्र सीता नदी है। उसके दक्षिण भागमें वत्स नामका देश है, वहांपर अनेक धर्म वार्ताओं से युक्त पृथ्वीपुर नामका नगर है, जिसका अधिपति धर्मात्मा, दयालु बुद्धिमान् जयसेन नामका राजा है, उसे जयसेना नामकी रानी है, जो गुणवती है, उन दोनों को शुभलक्षणसंपन्न धृतिषेण और रविषेण नामके दो पुत्र थे, जो उन दंपतियोंको एवं प्रजाओंको सुख प्रदान करते थे ॥ ११-१२-१३-१४-१५ ॥

धर्मवन्तौ भाग्यवन्तौ भोगवन्तौ बभूवतुः ।
तौ कर्मवशतो मृत्युमेकोऽगादनुजस्तथा ॥१६॥
ततः सम्मूर्च्छितो राजा मंत्रिभिः प्रतिबोधितः ।
तदा संप्राप्य चैतन्यं विरक्तः तद्गुणादभूत् ॥१७॥
अनुप्रेक्षां हृदि स्थाप्य द्वादशामंततोचिरं ।
ज्येष्ठपुत्राय तद्राज्यं दत्वा समगृहीत्तपः ॥१८॥
समुत्सह्य वनं गत्वा यशोधरसमीपतः ।
दीक्षां गृहीत्वा केशानां लुंचनं पंचमुष्ठिभिः ॥१९॥
कृत्वा पंचमहाद्यानि व्रतानि समितिस्तथा ।
पंच चाथ त्रिगुप्तिश्च प्रमोदात् समधारयत् ॥२०॥
ततः कृत्वायुषांते स सन्यासं प्राप्य चोत्तमं ।
देवोऽभूत् षोडशे कल्पे नामतोऽयं महाबलः ॥२१॥
द्वाविंशत्सागरायुष्यं तत्प्रमाणसहस्रतः ।
[illegible] परमाहारं मानसं समुपाहरत् ॥२२॥
द्वाविंशत्पक्षगमने श्वासोच्छ्वासगतोऽभवत् ।
[illegible] तत्र महानंदभुक् भूयांति स चायुषः ॥२३॥
[illegible] [illegible] ह्यनाकृष्टः स देवराट् ।
[illegible] [illegible] भूतले अवतीर्यताम् ॥२४॥

[illegible] ।
[illegible] ॥३१॥

[illegible] ।
[illegible] ॥३२॥

[illegible] ।
[illegible] ॥३३॥

चतुः[illegible] ।
सहजा [illegible] ॥३४॥

कतिचिद्देवतासार्धैः तस्य [illegible] ।
महासमर्थः तैर्युक्तः सगरो राज्यमन्वभूत् ॥३५॥

एकदाभूत्तपोद्याने चारणौ द्वौ समागतौ ।
अजितंजय एकोऽभून्नाम्नाऽन्यश्चामितंजयः ॥३६॥

श्रुत्वा तावागतौ राजा हर्षेण महतोत्सुकः ।
तत्र गत्वा चिरं भूयो शिरसा प्रणनाम सः ॥३७॥

प्रणम्य पश्चात्संपूज्य विधिवत्सुसमाश्रितः ।
बद्धांजलिस्तौ पप्रच्छ मनोभावं प्रकाशयन् ॥३८॥

यद्दिनादजितेशस्य मोक्षः सम्मेदपर्वते ।
श्रुतो मया मुने! तस्मात् दिनादत्युत्सुकं मनः ॥३९॥

सम्मेदशैलयात्रायै यात्राविधिरिहोच्यतां ।
क्रियते केन विधिना कथं किं फलमाप्यते ॥४०॥

नृपवाक्यमिति श्रुत्वा चारणो मुनिरब्रवीत् ।
धन्योऽसि भाग्यजलधे! त्वत्समः को महीतले ॥४१॥
यतः सम्मेदशैलेन्द्रयात्रायै त्वं समुत्सुकः ।
श्रृणु राजेंद्र! तद्यात्राविधिं फलमिहोत्तमं ॥४२॥

यात्रोत्सुको भव्यजीवः प्रथमं सिद्धवंदनां ।
विधाय विधिवद्भूप! चतुस्संघं प्रपूज्य च ॥४३॥
सत्कारैः सार्धगान् कृत्वा कुर्याद्यात्रां च शैखरीं ।
यतयश्चार्यिकास्तद्वत् श्रावकाश्राविकास्तथा ॥४४॥
चतुस्संघाः समाख्याताः सानियोगाः शुचिव्रताः ।
यस्तु मोक्षफलाकांक्षी तितीर्षुर्मोहसागरम् ॥४५॥

भावार्थः- नवनिधि, चौदह रत्नको प्राप्त उस चक्रवर्तीको सुंदरी गुणवती छ्यानवे हजार रानियां थी। ६० हजार पुत्र थे। जो महाबलशाली व पराक्रमी थे। अठारह करोड उत्तम जातिके घोडे थे। ८४ लाख उतम जातिके हाथी थे। इस प्रकार अनेक परिवार वैभवके साथ देवविद्याधरोंके द्वारा मंडित षट्खंडको वह पालन कर रहा था ॥३१। ३२॥३३॥३४॥३५॥

एक दिनकी वात है। उस अयोध्या नगरके तपोवनमें दो चारण मुनीश्वर पधारे। जिनमें एकका नाम था अजितंजय और दूसरेका नाम था अमितंजय। इन दोनों चारण मुनीश्वरोंके आगमनको सुनकर राजा वहुत ही प्रसन्न हुआ। वहुत उत्साहके साथ दर्शनके लिए गया। वहां पहुंचकर मुनिचरणोंमें भक्तिसे प्रणाम कर विधिके साथ पूजा की। तदनंतर हाथ जोडकर विनयसे प्रार्थना की कि स्वामिन्! जिस दिनसे मैंने सुना कि भगवान् अजितनाथकी मुक्ति सम्मेदपर्वतसे हुई उसी दिनसे सम्मेदशिखरकी यात्रा करनेकी भावना उत्पन्न हो गई है। इसलिए कृपया सम्मेदशिखरकी यात्रा, यात्राविधि एवं फलके संवंधमें प्रतिपादन करें ॥३६।३७॥३८॥३९॥४०॥

राजाके इस वचनको सुनकर वह चारणमुनि कहने लगे कि राजन्! तुम धन्य हो, तुमसरीखे भाग्यशाली इस भूतलमें कितने हैं? तुम सम्मेदशिखरकी यात्राके लिए उत्सुक हो। इसलिए उसकी यात्राविधि एवं फलको कहते हैं। सुनो। जो यात्राके लिए सन्नद्ध है वह निश्चय ही भव्य है। सवसे पहिले वह सिद्धवंदना कर विधिके साथ चतुस्संघकी पूजा करें। साथमें जानेवाले मुनि आर्यिका श्रावक श्राविकारूप चतुस्संघका वह सत्कार करें। क्योंकि ये चार संघके वंधु निर्मलव्रतके धारक होते हैं। इस प्रकार मोक्षफलके आकांक्षी मोहसागरको पार करनेकी इच्छासे करें ॥४१॥४२॥४३॥४४॥४५॥

भावार्थः- जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें कोशल नामक देश है। जहां अयोध्यानगर बहुत प्रसिद्ध है। वहांपर राजा दृढरथ राज्यपालन कर रहा है। वह अत्यंत धार्मिक था। अतः धर्मरूपी समुद्रके लिए चंद्रमाके समान था। उसे विजयसेना नामकी रानी थी। जिसने सोलह स्वप्न देखे।

वह अहमिंद्र देव आकर उसके गर्भमें अवतरित होनेवाला है, उससे छह महिने पहिलेसे देवेंद्रकी आज्ञासे कुबेरने छह महिनेतक रत्नवृष्टि की। ज्येष्ठ मासकी अमावस्याके रोज रोहिणी नक्षत्रमे रानी विजयसेनाके गर्भमें वह अवतरित हुआ। उससे वह देवी शोभित हुई। माघ शुक्ला दशमीके रोज रोहिणी नक्षत्रमें वह उक्त सूर्यगृहके समान प्रकाशपुंज गृहमें जन्म लिया ॥६१॥६२।६३॥६४।६५॥

उसी समय देवेंद्रादिकोंने मेरु पर्वतपर ले जाकर उस जिनेंद्र बालकका जन्माभिषेक क्षीर समुद्रके जलसे किया। पुनः अयोध्या नगरीमें ले जाकर अजितनाथ नामाभिधान कर बहुत आनंदके साथ जिनबालकके सामने नृत्य किया। उसे देखकर अनेक अन्य देव भी प्रसन्न होकर अनेक प्रकारसे नृत्य करने लगे। अयोध्यामें सर्वत्र आनंद ही आनंद हुआ। इंद्रके साथ देवगण स्वर्गलोकको चले गये।

मातापिता त्रिलोकीनाथ प्रभुको देखकर एवं उसकी बाललीलाओंको देखकर विशिष्ट आनंदको प्राप्त भये। ७२ लाख पूर्व वर्षोंकी आयुको अजितनाथने प्राप्त किया। ४५० धनुषका शरीर प्राप्त किया ॥६६॥६७॥६८॥६९॥७०॥

कौमार कालको व्यतीत कर पिताके द्वारा प्रदत्त राज्यको अनुभव कर अजितनाथ विरक्त हुए। माघ शुक्ल नवमीके रोहिणी नक्षत्रमें दीक्षा ग्रहण की और तप किया। पौष मासके शुक्ल एकादशीके रोज अपरान्ह कालमें केवलज्ञानको प्राप्त किया। तब कुबेरके द्वारा निर्मित समवसरण प्राप्त कर दिव्यध्वनि, गणधरादियोंसे युक्त होकर ३२ हजार वर्षोंतक भव्योंको आनंदित किया ॥७१॥७२॥७३॥७४॥७५॥

भावार्थः- अजितनाथ भगवान् अनेक क्षेत्रों में विहार करते हुए एवं भव्योंको धर्मोपदेश देते हुए सम्मेदाचलपर पधारे और एक मासतक दिव्य-ध्वनि आदिका निरोध कर एक हजार मुनियोंके साथ चैत्र शुक्ल पंचमीके रोज प्रतिमायोगको धारण किया एवं सिद्धकूटमें ध्यानाग्निके द्वारा कर्मको जलाकर मोक्षको प्राप्त किया ॥ ६॥७७॥७८॥

इस प्रकार मुनिराजके वचनको सुनकर सगर चक्रवर्तिने सम्मेद-शिखरकी यात्राके लिए तैयारी की। एवं चतुःसंघको साथमें लेकर पहिले दिन ३ कोस प्रयाण किया। उसके साथ सारा परिवार था। ८४ लाख हाथी थे। वायुवेगसे जानेवाले घोडे अठारह करोड थे। ८४ लाख रथ, करोड पदाती, असंख्य विद्याधर, करोडो ध्वज, दुंदुभि आदि वाद्य, आदिके द्वारा समस्त देशके लोगोंको प्रसन्न करते हुए राजा सम्मेदशिखरपर पहुचे।

सगरचक्रवर्तिने वहां सिद्धवरकूटपर अजितनाथके चरणोंकी स्थापना की। नतर वार वार भक्तिसे उनके चरणोंकी पूजा कर तीन वार समस्त पर्वतकी परिक्रमा की। वहुत वडे उत्सव के जयजय-कारके साथ वहुत वडा महोत्सव किया।

इस महान् उत्सवको देखकर देवोंने पंचाश्चर्य वृष्टि की इसे देखकर वहां सभी आश्चर्यचकित हुए ॥७९॥८०॥८१॥८२॥८३॥ ८४॥८५॥८६॥

उस सिद्धवरकूटमें भगवान् अजितनाथके साथ एक हजार मुनि मुक्तिधामको गये। इसके वाद एक अर्बुद ८४ करोड ४५ लाख मुनि उस सिद्धवरकूटसे मुक्तिको गये हैं। एक कूटमें मुक्तिको प्राप्त हुए सिद्धोंकी संख्या नहीं कह सकते हैं तो पूर्ण कूटकी संख्या कौन कवि कहे? अर्थात् वह कहना या गिनना वहुत कठिन काम है ॥८७॥८८॥ ८९॥९०॥

# द्वितीय अध्यायका सारांश

भगवान् महावीरके समवसरणमें श्रेणिकनें प्रश्न किया कि भगवन्! ज्ञानके विना क ं नाश नहीं होता है, तपके विना ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए तप व ज्ञानके जो अधिकारी नहीं हैं उनको मोक्षका क्या उपाय है, यह कृपा कर वतलाईये। तब भगवा ने दिव्यध्वनिसे निरूपण किया कि जो कोई शुद्ध भावसे सम्मेदशिखरकी यात्राको करता है वह निश्चित ही मोक्षको प्राप्त करता है। वहांपर सर्वप्रथम अजितनाथका मोक्षस्थान सिद्धवरकूट नामका है। उसका दर्शन सगर चक्रवर्तिने किया। यहांपर ग्रंथकारने सगरचक्रवर्तिके चरित्रका वर्णन किया है। और उन्होंने अजितंजय मुनीश्वरके पास सम्मेदशिखरजी यात्राकी महत्ताको अवगत किया। उन्होंने यथागम इस यात्राविधिका प्रतिपादन किया। साथ ही सगर चक्रवर्तिके प्रश्नपर भगवान् अजितनाथके वृत्तांतको भी वहुत विस्तारके साथ कहा। अजितनाथ तीर्थंकरका गर्भजन्म तप केवल एवं निर्वाणका विस्तारके साथ इस अध्यायमें कथन किया है। अजितनाथ तीर्थंकरने प्रतिमायोगके साथ चैत्र शुक्ल पंचमीके रोज सिद्धवरकूटसे सर्व कर्मोंको ध्यानरूपी अग्निसे जलाकर मुक्तिको प्राप्त कर लिया। चारण मुनियोंके उपदेशसे सगरचक्रवर्ति वहुत ही प्रसन्न हुए। उसी दिन सम्राट् सगरने शुभ मुहूर्तमें यात्राका संकल्प किया। वहुत भक्तिपूर्वक सर्व परिवारके साथ मिलकर सम्मेदशिखरकी यात्रा की। उक्त कूटसे अजितनाथके वाद एक अर्वुद ८४ करोड, ४५ लाख मुनियोंने सिद्धधामको प्राप्त किया है। इस पर्वतराजकी वंदना भावसहित जो करते हैं उन्हे ३२ करोड प्रोषधोपवासका फल मिलता है। साथ ही नरक तिर्यंचायुका वंध नहीं होता है।

सम्मेदशिखर यात्राका फल श्री भगवान् महावीरके द्वारा प्रतिपादित है। उसे श्रद्धा करनी चाहिये। जो भव्य श्रद्धापूर्वक इस यात्राको करते हैं वे निश्चयसे संसार परिभ्रमणको दूर करते हैं।

——○○——

# तीसरा अध्याय

भावार्थः- अब श्री संभवनाथ तीर्थंकरका वर्णन किया जाता है। जिन्होंने दत्तधवलकूटसे तपश्चर्या कर मुक्तिको प्राप्त किया ॥१॥ इस जंबूद्वीपके पूर्व विदेहके सीता नदीके उत्तर भागमें कच्छ नामका देश है। जहां क्षेमपुर नामका नगर है। वहां राजा विमलवाहन राज्यपालन कर रहा था। काललब्धिसे एक दिन मेघको उत्पन्न नष्ट होते हुए देखकर उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ। यह संसारसौख्य असार है। अतः यह तृणके समान है यह जानकर अपने पुत्र विमलकीर्तिको राज्य दिया। तदनंतर समवसरणमें स्वयंप्रभु तीर्थंकरके पास जाकर जिनदीक्षा ली। षोडषकारण भावनाओंको भाकर तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया।

अंतमें समाधिमरणसे देहत्याग कर पूर्वग्रैवेयकके सुदर्शन विमानमें अहमिंद्र देव होकर उत्पन्न हुआ। उसकी आयु २३ सागरोपमकी थी। शरीरका उत्सेध साठअंगुल प्रमाण था। शुक्ललेश्याके साथ युक्त होते हुए २३ हजार वर्षोंके बाद एक बार वह मानसआहार लेता था। २३ पक्षके बाद एक बार श्वासोच्छ्वास करता था। उत्तम ब्रम्हचर्यके साथ देवगतिके उत्तम भोगोंका भोगता था। उसके अवधिज्ञानकी मर्यादा सप्तम नरकतककी थी। और वहींतक विक्रिया तेजबल पराक्रम आदिकी मर्यादा थी। अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य ईशित्व, वशित्व, इस प्रकारके अष्ट ऐश्वर्योंको अनुभव करते हुए वह पूर्व तपःफलसे अहमिंद्र पदके सुखका वह यथेष्ट अनुभव करता था।

सर्व आयुष्यको सुखपूर्वक भोगते हुए अब केवल छह महीने बाकी रह गये हैं। अब वह पृथ्वीपर आकर जन्म लेनेवाला है। इस प्रकार अंतिम समय आ गया है ॥२॥३॥४॥५॥६॥७॥८॥९॥१०॥ ११॥१२॥१३॥

जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें आभीर देशमें श्रावस्ति नामक नगर है। वहां इक्ष्वाकुवंश, काश्यपगोत्रमें उत्पन्न जितारि नामका राजा था। जो धर्मवृद्धि करनेवाला था ॥१४॥१५॥

भावार्थः– उसकी रानी अनेक शुभलक्षणोंसे युक्त सुषेणा नामकी थी, जो अनेक शुभ परिणामोंसे युक्त होनेके कारण राजाको प्राणसे भी अधिक प्यारी थी ॥१६॥ देवेंद्रने अवधिज्ञानसे जान लिया कि वह अर्हमिंद्र रानी सुषेणाके गर्भमें अवतरित होनेवाला है। अतः छह महीनेतक रत्नवृष्टि करनेके लिए कुबेरको आज्ञा दी। छह महिनेतक रत्नवृष्टि होते हुए देखकर मंत्री राजासहित सर्व पुरजनोंको आश्चर्य हुआ ॥१८॥

एक दिन फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षके मृगशिरा नक्षत्रमें उस देवीने षोडश स्वप्नोंको देखा और स्वप्नके अंतमें मुखके अंदर हाथीके प्रवेशको देखा तो आश्चर्यचकित होकर प्रातःकाल अपने पतिसे निवेदन किया। उन्होंने उसका फल जो बताया उससे वह बहुत ही आनंदित हुई। वह अहमिंद्र देव गर्भमें अवतरित हुआ। उस पुण्यगर्भके कारण वह माता बालसूर्यको छिपानेवाली शरदकालकी चंद्रमाके समान शोभित हुई। मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षकी पूर्णिमाके रोज रानी सुषेणाने पुत्ररत्नको जन्म दिया ॥१९॥२०॥२१॥२२॥

इस विषयको देवेंद्रने जानकर ऐरावत हाथीको सुसज्जित कर जन्माभिषेककी तैयारी की। वह ऐरावत हाथी एक लाख योजन उन्नत है। उसे ३२ मुख हैं। प्रति मुखमें आठ आठ दांत हैं। हर एक दांतके ऊपर एक एक सरोवर है। एक एक सरोवरमें १२५ कमल हैं। और उनमें पच्चीस पच्चीस बडे उत्तम कमल हैं। एक एक कमलके एक हजार आठ दल (पत्र) हैं। उन दलोंके ऊपर नृत्यके जाननेवाली देवांगनायें नृत्य कर रही हैं। उनकी संख्या २७ कोटि है। इस प्रकार सबके मनको आकर्षित करती हुई वे वहां नृत्य कर रही हैं। ॥१६॥

उस ऐरावतपर चढकर देवेंद्र असंख्य देवोंके साथ आकर उस पुण्य नगरीकी ३ प्रदक्षिणा दी। एवं उस महलसे उपायके साथ जिनबालकको लेकर मेरु पर्वतपर गया। सबसे पहिले उसने उस नगरपर गया। वहां क्षीर समुद्रके एकसौ आठ सुवर्णकलशोंसे जन्माभिषेक कर भगवान्की बडी भक्ति की ॥२३॥२४॥२५॥२६॥२७॥२८॥२९॥३०॥

जय निर्घोषपूर्वं च तत्राहंन्मंगलं परं ।
देवेशलक्षणं दिव्यं दिदीपे देवतार्चिते ॥३१॥
सहस्राष्टशताधिक्यगणितानि शुभानि च ।
बाह्याभ्यंतरचिन्हानि बभूवुस्तस्य वर्ष्मणि ॥३२॥
ततस्सुरेंद्रस्तं देवं श्रावस्तिपुरमानयत् ।
भ्रूपांगेन समारोप्य तांडवं समदर्शयत् ॥३३॥
प्रसन्नचेतसा कृत्वा ततस्तं शंभवाभिधं ।
मात्रके तं समर्प्याथ स देवस्स्वांपुरीं ययौ ॥३४॥
गते कालेथ त्रिंत्रिंशत्कोटिसागरसम्मिते ।
अजितेशादभूत्तत्र काले श्रीशंभवप्रभुः ॥३५॥
षष्ठिलक्षोक्त पूर्वायुः तस्य देवस्य चाभवत् ।
चतुश्शतधनुर्मानं कायोत्सेधः प्रकीर्तितः ॥३६॥
पंचोत्तरदशप्रोक्त–लक्षपूर्वप्रमाणतः ।
कालस्तस्य व्यतीयाय कौमारे तत्कुतूहलात् ॥३७॥
ततो राजा बभूवासौ राज्यैतस्य सुधर्मिणः ।
चतुरुत्तरचत्वारिंशत् पूर्वा भोगतो गताः ॥३८॥
एकदा सिंहपीठे सः सुखासीनः प्रजेश्वरः ।
तारापातं ददर्शाग्रे तदा चित्ते विचिंतयत् ॥३९॥
तारापातवदेतद्धि सर्वंमंगादिकं भुवि ।
नश्वरश्चैव संसारः सारो न हृदि चिंतितः ॥४०॥
अनुप्रेक्षां द्वादशकां भावयामास मानसे ।
तदा लौकांतिका देवाः प्राप्ता भूपतिसन्निधौ ॥४१॥
ऊचुस्तुल्यामृतं देव विमर्शमिति को भुवि ।
त्रिरध्याद्राज्यसंपत्तौ अपि प्राप्तं विरक्ततां ॥४२॥
तदा राज्यं सुपुत्राय दत्वासौ सार्वभौमकं ।
स्वयमारूह्य सिद्धार्थी शिबिकामद्भुतप्रभां ॥४३॥
नृपविद्याधरसुरेन्द्रां देवकृतोत्सवः ।
तपोवनमुपागच्छत् गीर्वाणगणसंस्तुतः ॥४४॥
मार्गशीर्षमासे मार्गे भाति सिते दले ।
पंचदश्यां स जग्राह तपोदीक्षामनाकुलः ॥४५॥

भावार्थः- जयजयकार करते हुए भगवान्के शरीरमें स्थित १००८ लक्षणोंको देखकर देवेंद्र बहुत ही प्रसन्न हुआ। तदनंतर श्रावस्तिनगरमें ले जाकर मातापिताओंके पास बालकको सौंपकर देवेंद्रने तांडव नृत्य किया। बहुत प्रसन्नताके साथ उक्त बालकको शंभवनाथ यह नामाभिधान कर माताके गोदमें बालकको देकर देवेंद्र सपरिवार अपने स्थानपर चला गया।

अजितनाथके बाद ३३सागरकरोड वर्षोंके जानेके बाद संभवनाथकी उत्पत्ति हुई। संभवनाथकी आयु साठ लाख पूर्व थी। ४०० धनुष प्रमाण शरीरका उत्सेध था। कुमारकालमें १५ लाख पूर्व वर्ष व्यतीत होनेके बाद राजाने शंभवकुमारको राज्यपद प्रदान किया। राज्यपालन करते हुए राज्यकालमें ४४ लाख पूर्व व्यतीत हुए। एक दिनकी बात है। वह शंभवप्रभु सिंहासनपर सुखासनमें विराजमान हैं। अकस्मात् आकाशसे एक ताराका पतन हुआ। उसे देखकर उन्होंने विचार किया ॥३१॥३२॥३३॥३४॥३५॥३६॥३७॥३८॥३९॥

इस संसारमें सभी शरीरवैभवादिक तारापतनके समान ही नश्वर हैं, चंचल है, इसमें कोई सार नहीं है। तत्काल उन्होंने अपने मनमें द्वादश अनुप्रेक्षाओंकी भावना की।

उसी समय लौकांतिक देव आये। प्रभुसे कहने लगे कि भगवन्! आपने बहुत ही सुंदर विचार किया है। राज्य व संपत्तिसे विरक्त होना यह साहजिक है, संसार असार है।

प्रभुने राज्यको पुत्रके कंधेपर रखकर स्वयं विद्याधर राजा व देवोंके द्वारा प्रचालित, द्धर्थ नामक शिबिकापर चढकर तपोवनके प्रति प्रस्थान किया। देवगण उस समय जयजयकार कर रहे थे, मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षके पूर्णिमाके रोज सहेतुक वनमें उन्होंने प्रवेश किया ॥४०॥४१॥४२॥४३॥४४॥४५॥

सहस्रैस्सह भूपालैः दीक्षितोयं महाप्रभुः ।
महाव्रतानि पंचाश्च धृत्वा तेजोर्कसन्निभः ॥४६॥
मनःपर्ययबोधाढ्यो बभूव किल तत्क्षणात् ।
अंतर्मुहूर्ते तज्ज्ञानं प्रादुरासीत्प्रभोस्तदा ॥४७॥
द्वितीये दिवसे देवो नगरं कनकाभिधं ।
गत्वा भिक्षां समकरोत् कनकप्रभभूपतेः ॥४८॥
आहारसमये लेभे पंचाश्चर्याणि भूपतिः ।
पुनः समागमद्देवः तपोवनमनुत्तमं ॥४९॥
द्विसप्ततिसमं देवः छद्मस्थः तप आचरन् ।
कार्तिकस्य चतुर्थ्यां स कृष्णायामपरान्हके ॥५०॥
षष्ठोपवासकृच्छालतले केवलमाप सः ।
तदा समवसारः सः स्वयं शक्रादिनिर्मितः ॥५१॥
यथासंख्यं गणेंद्राश्च तिर्यंगता प्रहर्षिताः ।
स्वे स्वे कोष्ठे विराजंते प्रभुस्तवनतत्पराः ॥५२॥
सहस्रसूर्यसदृशः तत्र सिंहासने शुभे ।
विभूतिसहितः सम्यग्व्यराजत तपोनिधिः ॥५३॥
गणेंद्राद्यैश्च संपृष्टो दिव्यध्वनिमुदाहरन् ।
नानाधर्मोपदेशं स कृतवान् तत्र निर्मलं ॥५४॥
विहृत्य धर्मसद्देशान् षष्ठीमासप्रमाणतः ।
आयुषि स्वं दिव्यनादं तदा समहरत्प्रभुः ॥५५॥
सम्मेदशैलचन्द्रकूटं मुनिवरैस्सह ।
संप्राप्य तत्र शुद्धात्मा मासमेकमुपासह ॥५६॥
[illegible] सहस्रमुनिभिस्सह ।
[illegible] मुक्ति परमदुर्लभाम् ॥५७॥
[illegible] द्विसप्तति ।
[illegible] ॥५८॥
[illegible] संख्याप्रमाणतः ।
[illegible] ॥५९॥
[illegible] विधायिनः ।
[illegible] ॥६०॥

भावार्थः- वहांपर निराकुल होकर भगवान्ने हजार राजावोंके साथ जिनदीक्षा ली। पंचमहाव्रतादि मूलगुणोंको धारण किया। तत्काल ही उन्हे मनःपर्ययज्ञानकी उत्पत्ति हुई। अर्थात् अंतर्मुहूर्तमें ही उन्होने उत्तम मनःपर्ययज्ञानको प्राप्त किया। दूसरे दिन उन्होने, कनकपुर नामके नगरमें पहुंचकर कनकप्रभ राजाके यहां आहार ग्रहण किया। आहारदानके समय पंचाश्चर्य वृष्टि हुई। तदनंतर प्रभुने दीक्षावनके प्रति गमन किया। एवं अठारह छद्मस्थ रहकर तप किया।

नंतर कार्तिक कृष्ण चतुर्थीके अपरान्ह कालमें षष्ठोपवाससे रहते हुए एक स्वच्छ शिलातलपर प्रभुने केवलज्ञानको प्राप्त किया। उस समय देवेंद्रने केवलज्ञानकल्याणको संपन्न कर समवसरणका निर्माण कराया। उसमें गणधरको आदि लेकर तिर्यचपर्यंतके सभी भव्य अपने २ कोठोंमें विराजमान थे। प्रभुकी स्तुतिमें लीन थे।

अष्टमहाप्रातिहार्यादि वैभवोंसे युक्त भगवान् सिंहासनपर हजार सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशसे जगमगाते हुए विराजमान थे। गणधरादिकोंसे प्रश्न होनेपर दिव्यध्वनिके द्वारा प्रभुने धर्मोपदेश देते हुए अनेक देशोंमें विहार किया।

एक महिनेकी आयु शेष रहनेपर प्रभुने दिव्यध्वनि व समवसरणका त्याग किया एवं सम्मेदशिखरके धवलकूटपर अनेक मुनियोंके साथ पहुंचकर एक महीनेतक समाधियोगको धारण किया। वैशाख शुक्ल षष्ठीके रोज प्रभुने हजार मुनियोंके साथ परम दुर्लभ मुक्तिपदको प्राप्त किया।

तदनंतर उस धवलकूटसे अभिनंदन तीर्थंकरपर्यंत नौ कोडाकोडी बहत्तर लाख सात हजार पांचसौ बयालीस भव्य मुक्तिको प्राप्त हुए। उक्त धवलकूटकी यात्रा जो भावपूर्वक करते हैं उन्हें तिर्यंच गति एवं नरकगतिका बंध निश्चित ही नाश होता है ॥४६ से ६३॥

भावार्थः— उक्त धवलकूटकी यात्रासे ४२ लाख प्रोषधोपवासका फल प्राप्त होता है। एक कूटकी यात्रासे यह फल प्राप्त होता है तो सर्व कूटोंकी यात्रासे क्या फल होगा इसे कहनेके लिए सरस्वती भ समर्थ नहीं है ॥६१॥६२॥

जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें वंग देशमें हेमपुर नामक नगर है जहां हेमदत्त नामक धार्मिक राजा राज्य कर रहा था। उसकी रानी जयसेना ✻ नामकी थी। ये दोनों पुत्रहीन थे। महान् विभवको पाकर भी सदा पुत्रकी इच्छासे आकुलित थे।

एक दिन रानीने हेमदत्त राजासे कहा कि स्वामिन्! पुत्रकी इच्छा है। उसके लिए कोई प्रयत्न किया जाय। राजाने कहा कि संसारमें शुभ अशुभ सभी कर्मके वशसे होते हैं। फिर भी रानीने कहा कि प्रभो! फिर भी प्रयत्न करना तो आवश्यक है।

तदनंतर दोनों चंपावनमें पहुचे। वहां पर शोक वृक्षके नीचे तप करते हुए दो चारण मुनियोंको देखा। दोनोंने मुनिराजोंको परिक्रमा देकर भक्तिसे वंदना की। तदनंतर प्रार्थना की कि भगवान्! कृपया मेरे निवेदनको श्रवण करें।

इस जगतमे मैं अपुत्र हूं।मुझे पुत्र होगा या नहीं? तब मुनिराजने विचार कर कहा कि राजन्! मेरे कथनके, अनुसार करो। सम्मेद शिखरकी यात्रासे तुम्हें पुत्रसंतति होगी। पुत्रसौख्यको पाकर बाद तुम मुक्तिको प्राप्त करोगे। मुनिकी आज्ञा पाकर अपनी रानीके साथ लाल वस्त्र पहनकर यात्राकी तयारी की। चार संघके एक करोड भव्योंके साथ बहुत वैभवसे राजा हेमदत्त सम्मेदशिखर गया। उस पर्वतकी तीन प्रदक्षिणा देकर आनंदसे भक्तिसे वंदना पूजा कर अपने महलमें आया। तदनंतर उसे रत्नदत्त नामक पुत्र हुआ। उसीके वंशमें मघवान् चक्रवर्ति भी हुआ। उसने भी २२ लाख भव्योंके साथ सम्मेदशिखरकी यात्रा की ॥६१-७५॥

✻ अन्य पुस्तकोमें हेमसेनाका उल्लेख है।

यात्रा सम्मेदशैलस्य सर्वकामप्रदा [illegible] ।
[illegible] ॥७५॥
[illegible] लोहाचार्येण च [illegible] ।
तद्भव्येषु प्रमाणं हि मन्यन्ते नाधिकारिणः ॥७७॥
श्रीसम्मेदगिरीन्द्र[illegible]कूटस्थितः ।
कायोत्सर्ग[illegible] यो [illegible] ।
योगाग्नि[illegible]
द्व्यामोहाटविकस्य पातु सततं श्रीसंभवो नः प्रभुः ॥७८॥

इति देवदत्तसूरिविरचितसम्मेदशिखरमाहात्म्ये
दत्तधवलकूटवर्णनं नाम
तृतीयोऽध्यायः

भावार्थः– इस प्रकार सम्मेद शिखर की यात्रा सब इष्टार्थ पूर्ण करनेवाली है, धर्म अर्थ काम और मोक्षरूपी चतुर्वर्ग के फल इच्छा रखनेवाले विवेकी भव्यों के द्वारा अवश्य करने योग्य है। यात्रा के उत्तम फल को भगवान् महावीरने तत्पश्चात् लोहाचार्य प्रतिपादित किया। अतएव भव्यों के लिए वह प्रमाणभूत है, अ उसे नहीं मानते हैं। और यात्रा के वे अधिकारी नहीं हैं। ॥७६–

श्रीसम्मेदशिखर के प्रख्यात अनेक योगींद्रों के द्वारा व धवलकूटपर कायोत्सर्गमें स्थित होकर जिस संभवनाथ भगव ज्ञानाग्नि के द्वारा कर्मों को नाश किया वह भगवान संभवनाथ हमारी रक्षा करें ॥७८॥

इस प्रकार सम्मेदशिखरमाहात्म्यमे दत्तधवलकूटवर्णनमें
विद्यावाचस्पति पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री रचित
भावार्थदीपिका टीकामें

## तीसरा अध्याय

समाप्त हुआ।

# तृतीय अध्यायका सारांश

इस अध्यायमें संभवनाथ तीर्थंकरके चरित्रका वर्णन करते हुए ग्रंथकारने राजा विमलवाहन उनका वैराग्य एवं पुत्र विमलकीर्तिको राज्य देकर दीक्षा लेनेका वर्णन किया है। एवं षोडश कारण भावनावोंको भाकर उस विमलवाहनने तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया।

अहमिंद्र होकर जन्म. आयुके छह महिने बाकी रहनेपर श्रावस्ति नगर में जितारि राजाकी पट्टरानी सुषेणा रानीके गर्भमें अवतरण. देवेंद्र के द्वारा कुबेरको आज्ञा देकर श्रावस्ति नगरमें रत्नवृष्टि कराई, माताने १६ स्वप्नोंको देखा, मार्गशीर्ष शुक्ल १५ को प्रभुका जन्म. देवेंद्रके द्वारा ऐरावत हाथीपर आरूढकर पांडुक शिलापर ले जाना एवं वहां पर जन्माभिषेक कल्याण. देवेंद्रने आकर जिनबालकको मातापितावोंको सौंपकर तांडव नृत्य किया, एवं संभवनाथ नामाभिधानकर स्वर्गलोक में चला गया।

अजितनाथ के ३३ सागर करोड वर्षोंके बाद संभवनाथ हुए. ४४ लाखपूर्व बालककाल व राज्यकालमें उनके व्यतीत हुए। तारापतनको देखकर दरबारमें ही उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ। स्वर्गसे लौकांतिक देव आये, उन्होंने प्रभुकी स्तुति की। देवेंद्रने अवधिज्ञानसे जानकर सहेतुक नामक तपोवनमें दीक्षा कल्याणका विधान किया। तदनंतर उन्हें तप करते हुए कार्तिक कृ. ४ के रोज केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई, देवेंद्रने समवसरण की रचना की।

आयुके अंतमें अनेक देशोंमें विहार करते हुए प्रभुने सम्मेदाचलके दत्त धवलकूटपर पहुंचकर निर्विकल्पक समाधि धारण की। वैशाख सुदी ६ के रोज हजारो मुनियोंके साथ निर्वाणको प्राप्त किया, इसके बाद करोडों मुनियोंने इस दत्तधवल कूटसे अभिनंदन तीर्थंपर्यंत मुक्तिधामको प्राप्त किया है। अतः वह कूट पवित्र है। जो कोई यात्री भावपूर्वक इस दत्तधवलकूटकी वंदना करता है उन्हें तिर्यंच व नरक गतिकी प्राप्ति होती नहीं है। और वे क्रमशः मोक्षको प्राप्त करते है।

—००—

# चौथा अध्याय

भावार्थः– करोड़ सूर्योंसे भी अधिक प्रभावसे संयुक्त कपि-लांछनसे युक्त भगवान् अभिनंदन जयवंत रहें।

जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह में सीता नदीके दक्षिण भागमें सुंदर मंगलावती नामक देश है. वहांपर रत्नसंचय नामक नगर है, उसे महाबल नाम का राजा पालन करता है, वह पुण्यशील था, महासेना नामकी उसकी रानी थी। उसके साथ राजा संसार सुखको यथेष्ट अनुभव-कर रहा था।

एक दिन दर्पणमें अपना मुख देखते हुए एक सफेद बालको देखकर उसे संसार भोगसे वैराग्य उत्पन्न हुआ। पंचमहाव्रत षडावश्यकादि गुणोंको धारण कर एवं षोडश भावनाओंको भाते हुए सूर्य के समान तेजःपुंज होकर वह मुनि सुंदर प्रतीत हो रहे थे।

आयु के अन्तमें सन्यास विधिसे देहका त्याग कर सर्वार्थसिद्धिमें जाकर जन्म लिया। अपने तपोबलसे अहमिंद्र पदको प्राप्त कर उसने ३३ सागर आयुको प्राप्त किया। ३३ हजार वर्षोंके बाद एक बार मानस आहार वह अहमिंद्र लेता था। ३३ पक्षोंके बाद एकबार श्वासोच्छ्वास लेता था। चार अंगुल कम एक हस्त प्रमाण उसके शरीर का उत्सेध था। ब्रह्मचर्य के धारक वह अहमिंद्र सदा तत्वचर्चामें तत्पर था एवं कभी कभी सिद्धध्यानमें मग्न रहता था।

इस प्रकार अन्य अहमिंद्रों के साथ यथेष्ट सुखको अनुभव करते हुए आयुके अवसानमें छह महीने बाकी रहे, तब कर्मक्षय करने की इच्छासे वह इस भूमिपर अवतरित होनेवाला था। अर्थात् वह तीर्थंकर होकर इस भूमि में आनेवाला है। उसकी पुण्यकथा को मैं अब कहता हूं, सज्जन लोग अवश्य श्रवण करें। १–१५।

भावार्थः– जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कोसल नामका देश है, वहां अयोध्या नामकी नगरी है। वहां इक्ष्वाकुवंश, काश्यपगोत्रके राजा स्वयंवर जो पुण्यशील था, राज्य पालन कर रहा है। उसकी रानी सिद्धार्था है, जो पति के मन को आकर्षित करनेवाली है। उनके चित्त को प्रसन्न करने के लिए देवेंद्रने कुवेरको आज्ञा देकर छह महिनेतक रत्नवृष्टि कराई जिसे देखकर सवको आश्चर्य हुआ।

तदनंतर वैशाख मासके शुक्ल षष्ठीके पुनर्वसु नक्षत्रमे उस सिद्धार्था रानीनें सोलह स्वप्नोंको देखा। स्वप्नांतमे मुखमे गजका प्रवेश देखकर प्रातःकाल पतीके समीप स्वप्नवृत्तांतको निवेदन किया। राजाने उन स्वप्नोंके फलको प्रतिपादन किया। जिसे सुनकर रानी प्रसन्न हुई।

उस अहमिंद्र देवकी आयु पूर्ण होनेपर यहां इस रानीके गर्भमें आकर उत्पन्न हुआ। नंतर ९ महीनेके वाद माघ मासके शुक्ल द्वादशीके रोज रानीको पुत्रजन्म हुआ।

अवधिज्ञानके द्वारा देवेंद्रने जानकर अपने असंख्य परिवारके साथ उक्त वालकको मेरु पर्वतपर ले गया। वहां देवेंद्रने क्षीरसमुद्रकें जलसे अभिषेककर पुनः आयोध्या नगरमें लाकर सिंहासनपर विराजमान किया, यथावत् आदर वंदनादिकर तांडव नृत्यको प्रारंभ किया एवं माताकी गोदमे वालकको सौंपकर अपने परिवार-के साथ वह इन्द्र देवलोकको चला गया।

संभवनाथके अनंतर दस लाख कोटि सागर वर्षोके जाने के वाद अभिनंदन तीर्थंकर का जन्म हुआ। उन्हे पचास लाख पूर्वकी आयु थी ३५० धनुष प्रमाण उनका शरीर था। स्वर्णके समान उनके शरीरकी कांति थी। सुखसे वढते हुए अभिनंदन वालक अपनी वाल चेष्टावोंसे मातापिताको एवं अन्य सभीको आनंदित करता था ॥१६–२०॥

भावार्थ— कुमारकालके व्यतीत होनेपर पिताके द्वारा प्रदत्त राज्यको इन्होंने प्राप्त किया, अनेक स्त्रियोंके साथ विवाह होनेपर अभिनंदननाथ बहुत सुखसे समयको व्यतीत कर रहे थे।

एक दिन की बात है। प्रभु अपने महलकी छतपर बैठे हुए सुन्दर लीलाओंको देख रहे हैं। गंधर्वनगरका मेघ उत्पन्न होकर विघटित हो रहा है। इस दृश्यको देखकर प्रभुको तत्काल वैराग्य उत्पन्न हुआ। लौकांतिक देवोंने आकर स्तुति की। तदनंतर देवकृत उत्सवके साथ माघ मासके शुक्ल द्वादशीके रोज पुनर्वसु नक्षत्रमें स्वयंभूवनमें पहुं-चकर प्रभुने साथ परमपावन जैनेंद्र दीक्षा ली।

मतिश्रुत अवधिज्ञान तो पहिलेसे थे। दीक्षा लेते ही चौथा मनःपर्ययज्ञान भी प्राप्त हुआ। दूसरे दिन प्रभुने इंद्रदत्त राजाके घर विधिपूर्वक खीरके आहारको ग्रहण किया। पुनः तपोवनमें पहुंचकर तप करना प्रारंभ किया।

अठारह वर्षतक मौनमें रहकर घोर तपका आचरण करते हुए पौष सुदी चतुर्दशीके रोज शिरीष वृक्षके मूलमें प्रभुने केवलज्ञानको प्राप्त किया। उस समय देवेंद्रने कुबेरको आज्ञा देकर समवसरणकी रचना कराई। एवं प्रभु उस समवसरणमें विराजमान हुए। गणधरा-दिक समस्त परिवार भी एकत्रित हुए। घाति कर्मके नाश होनेसे केवलज्ञान होनेके साथ अनंतचतुष्टयकी भी प्राप्ति हुई। अतः सूर्यके समान प्रभु तेजपुंज थे।

तदनंतर प्रभुने महापुरुषोंके तथा मुनियोंके प्रश्नको सुनकर अपनी दिव्यवाणीसे धर्मोपदेश दिया। अनंतभव्योंने उपदेश सुनकर आनंदको प्राप्त किया। समवसरणमें दिव्यध्वनिके द्वारा भव्योंको उपदेशामृत पिलाते हुए प्रभुने अंग, वंग, कलिंग, काश्मीर, मालव, हम्मीर, मेद, चीन, महाराष्ट्र एवं लाट आदि अनेक देशोंमे विहार किया॥ ३१-४५॥

इत्यादिधर्मक्षेत्रेषु प्रभुणा धर्मरूपिणा ।
यदृच्छयाखिलैः सार्धं विहार कृतमुत्तमं ॥४६॥

मासमात्रावशिष्टे स्वायुष्यसौ संहरन् ध्वनिं ।
सम्मेदपर्वतं गत्वा स्थिताह्यानदकूटके ॥४७॥

शुक्लध्यानधरो देवः चैत्रांसितदले शुभे ।
सहस्रमुनिभिस्सार्धं प्रतिमायोगमास्थितः ॥४८॥

केवलज्ञानदीप्ताग्नि-दग्धकर्मवनः प्रभुः ।
पूर्वोक्तमुनिभिस्सार्धं निर्वाणपदमाप सः ॥४९॥

तत्प्रभाधिष्ठतत्कूट—यात्रामाहात्म्यमुत्तमं ।
वक्ष्ये येन कृता यात्रा तथा तत्कथयाम्यहं ॥५०॥

त्रिसप्ततयुक्तकोटीनां कोटिसप्तति कोटयः ।
सप्ततिप्रोक्तलक्षाश्च सप्तस[illegible]तप्रमात् ॥५१॥

सहस्राणि द्विचत्वारिंशत्पराणि शतानि च ।
पंचेत्युक्त प्रमाणा हि तत्रस्थाः सिद्धतां गताः ॥५२॥

जंबूद्वीपे शुचि क्षेत्रे भारते पूर्वमंदरे ।
राजा पूर्णपुरस्यासीत् नामतः रत्नशेखरः ॥५३॥

राज्ञी तस्य महापुण्या नाम्ना सा चन्द्रिकावती ।
तद्भूपवंशे विजय—भद्रोऽभूद्धरणीपतिः ॥५४॥

पूर्वासक्तो गुणानिधिः भव्यो भव्यजनस्तुतः ।
स्वधर्मसाधने रक्तः प्रजासंतोषकारकः ॥५५॥

स एकदा निजेच्छातः सेनानुगतः प्रभुः ।
प्रोत्फुल्लद्रुममालाढ्यो मुदायुक्तो वनं ययौ ॥५६॥

[illegible]नो मुनिस्तत्र तत्समीपं सः भूपतिः ।
गत्वा मनोवचःकायैः तत्पादौ चाप्यवंदत ॥५७॥

पुनर्मुनिं स पप्रच्छ प्रसन्नमनसा नृपः ।
नत्वाऽथ [illegible] विकसन्नेव कैरवः ॥५८॥

महाराज मुने! शैलराज सम्मेद उत्तमः ।
[illegible] गुर्वी मच्चेतसि सदा स्थितः ॥५९॥

स [illegible] यात्रा मे किं वा नैव महामुने ।
[illegible]

भावार्थः- अनेक धर्मक्षेत्रोमें गणधरादिकोंके साथ विहर कर धर्मवर्षा करने के बाद एक महीने की आयु जब बाकी रही तब सम्मेद शिखरपर पहुंच गये, एवं आनंदकूटके ऊपर हजार मुनियोंके साथ शुक्ल ध्यानको धारणकर चैत्र वदी मे प्रतिमायोग को धारण कर खडे हुए। केवलज्ञानरूपी अग्निसे कर्ममल को जलाकर प्रभुने उन हजार मुनियोंके साथ मोक्षधामको प्राप्त किया ॥४६॥४७॥४८॥४९॥

उक्त आनंदकूटकी यात्रा करने की महिमा एवं उक्त यात्राके फलको अब प्रतिपादन करता हूं ॥५०॥

बादमे उस आनंदकूटमें ७१ कोडाकोडी, ७० कोटी, ७० लाख ७ हजार पांच सो ४२ मुनियोनें सिद्धधामको प्राप्त किया ॥५१॥५२॥

इस जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें पूर्णपुर के अधिपति रत्नशेखर नामक राजा हुआ। उसकी रानी पुण्यवती चंद्रिकामती नामकी थी। उस राजाके वंशमे विजयभद्र नामक राजा हुआ, जो गुणशील, भव्य, भव्य जनोंके द्वारा वंदित, अपने धर्म में तत्पर एवं प्रजावोंको न्याय-नीतिसे पालन कर संतुष्ट करता था।

एक दिन वह विजयभद्र राजा अपने परिवारके साथ एक सुंदर वनमें गया जहां सिंहसेन नामक मुनि तपश्चर्या कर रहे थे। उनके पास राजाने पहुंचकर मन वचन कायकी शुद्धिसे भक्ति के साथ वंदना की एवं मुनिराजसे प्रसन्न चित्तसे प्रश्न किया कि स्वामिन्! सम्मेदशैलकी यात्रा बहुत उत्तम व पुण्यप्रदा है, उस यात्रा के लिए मेरे मनमें बडी उत्कंठा है। वह यात्रा मुझे होगी या नहीं ? आप सब जानते हैं, अतः मुझे कृपया प्रतिपादन करें। उस भव्य नृपके प्रश्नोंको सुनकर मुनिराजने इस प्रकार निरुपण किया। ॥५३॥५४॥५५॥५६॥५७॥५८॥५९॥६०॥

भूपतेऽवधिभूतेन मया चित्ते विचारितः ।
तव सम्मेदशैलस्य यात्रा नूनं भविष्यति ॥६१॥
गुणगंभीरसिंधुस्त्वं सत्यभावसमन्वितः ।
भव्योऽसि भव्यजीवानां तस्य यात्रा स्मृता बुधैः ॥६
मुनिवाक्यं समाकर्ण्य राजा हर्षसमाकुलः ।
यात्रोन्मुखो बभूवासौ श्रीमत्सम्मेदभूभृतः ॥६३॥
वार्ता सम्मेदयात्राया गता पृथ्वीपतेः * तदा ।
अभव्यस्तन्महीपालः सोपि यात्रोन्मुखोऽभवत् ॥६४॥
राजा विजयभद्रोऽसौ ससंघश्च ससैनिकः ।
चचाल गिरियात्रायै कृतनानामहोत्सवः ॥६५॥
सोऽपि राजाचलयात्रा-मुद्दिश्य बलसंयुतः ।
स्वप्नेऽपश्यत्स्वपुत्रं स मृतं मोहान्यवर्तत ॥६६॥
गतो विजयभद्रः सः सम्मेदं संघसंयुतः ।
विधिवत्कृतवान् यात्रा परमानंदसंयुतः । ६७॥
यात्रा अभव्यजीवानां सम्मेदस्य न वै स्मृता ।
भव्या एव सुयात्रार्हा इत्युक्तो संशयो न हि ॥६८॥
जटासेनोऽभवद्राजा सोपि संघसमन्वितः ।
यात्रां कृत्वा विधानेन सम्मेदाचलभूभृतः ॥६९॥
राज्यं विभावसेनाय दत्वा राज्याभिषेकतः ।
द्वात्रिंशल्लक्षजीवैश्च दीक्षां जग्राह धार्मिक. ॥७०॥
अथास्य ★ तिमिरं छित्वा केवलज्ञानभानुना ।
पूर्वोक्तजीवैस्सहितः सिद्धालयमवाप सः ॥७१।
विभावसेनवंशेभूद्राजा विपदसेनक ।
तेन सम्मेदयात्रा वै कृता श्रीचक्रवर्तिना ॥७२॥
आनंदकूटमहिमा कथितो बहुविस्तरः ।
संघभक्तिः कृता तेन बहुधा धर्मधारिणा ॥७३॥
सम्भवानंदकूटस्य दर्शनाद्भव्यमानवः ।
फलं ल्क्षोपवासानामभिरोचितां लभेत् ॥७४॥
तिर्यंचां नारकीं चैव न गतिं प्राप्नुयात्क्वचित् ।
इत्थंविधं फलं चंदकूटस्य मुनिभिस्स्मृतं ॥७५॥

---

* पृ. [illegible] माहात्म्यम्

★ अष्टक कर्मतिमिर [illegible]

भावार्थ– राजन् ! अवधिज्ञानसे मैंने विचार किया, तुम्हे सम्मेद
की यात्रा निश्चित रूपसे होगी । तुम बहुत ही गंभीर हो, सत्य
हो, भव्य हो, भव्योंको यह यात्रा अवश्य होती है । मुनिराजके
ो सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ एवं सम्मेदशिखरकी यात्रा
ई तैयारी की–, इस वार्ता को सुनकर अनेक लोग इस यात्राके
त्सुक हुए एवं एक अभव्य राजा भी यात्रा के लिए सन्नद्ध हुआ ।
विजयभद्र बहुत भक्तिके साथ चतुःसंघसे युक्त होकर अनेक
वों सहित यात्राके लिए रवाना हुआ । और बडे आनंदके
स पर्वतराजकी वंदना की ।

एक अभव्य राजा भी इनके साथ ही वंदना के लिए गया ।
मार्गमें ही अपने पुत्रमरणका स्वप्न देखा तो मोहसे वापिस लौटा
अभव्य जीवोंको यह यात्रा नहीं होती है । भव्योंको ही यह
होती है, यह सत्य है ।

जटासेन नामक राजाने चतुस्संघसहित होकर विधिके साथ
शिखरकी यात्रा की, तत्काल उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ । अपने
भावसेनको राज्य देकर ३२ लाख लोगोंके साथ जिनदीक्षा ली ।
समस्त घातियों कर्मोंको नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया
ोक्त लोगोंके साथ मोक्षको प्राप्त किया ।

विभावसेन राजाके वंशमें विव्यसेन नामक राजा हुआ, उस
उने भी सम्मेदशैल की यात्रा विधिवत् की, एवं अनेक प्रका–
रभक्ति की ।

सम्मेदशिखरपर स्थित आनंदकूटके दर्शनसे १६ लाख उप–
ा फल प्राप्त होता है । उस जीवको पुनः कभी तिर्यंच गति
रकगतिका बंध नहीं होता है । इस प्रकारके महाफलको एक
दर्शनसे भव्यजीव प्राप्त करता है, ऐसा मुनियोने प्रतिपादन
है ।। ६१–७५।।

# चौथे अध्यायका सारांश

भगवान् अभिनंदन स्वामीको नमस्कार कर जंबूद्वीपके पूर्वविदेह स्थित सीतानदीके दक्षिण भागमें रत्नसंचयपुर. वहांका राजा महाबल रानी महासेना. एक दिन दर्पणमें सफेद बाल को देखकर उसे वैराग्य उत्पन्न होना, विमलवाहन मुनिसे दीक्षित होना, आयुके अन्तमें सन्यास विधिसे देहत्यागकर सर्वार्थसिद्धिमें जन्म. तदनंतर छह महिनेकी आयु बाकी रहनेपर देवेंद्रकी आज्ञासे कुबेरकी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रके अयोध्या नगरमें रत्नवृष्टी कराई, वह राजा स्वयंवर रानी सिद्धार्थाके गर्भ में जन्म लिया, देवेंद्र जन्माभिषेक कल्याणकर अभिनंदन नामाभिधान-कर मातापिताको सौंपा, बालक दिनरद दिन परिवृद्ध होने लगा। यौवन कालमें पिताके द्वारा प्रदत्त राज्यको स्वीकार किया।

एकदिन अपने महलकी छतपर बैठे हुए इंद्रधनुष्यको नष्ट होते हुए देखकर शरीर भोगादिसे विरक्त हुए. लौकांतिक देव उसी समय आये व प्रभुकी स्तुति की, तदनंतर माघ शु. १२ पुनर्वसु नक्षत्रमें दीक्षा ली, दीक्षाके अनंतर ही उन्हें मनःपर्यय ज्ञानकी प्राप्ति हुई। इंद्रदत्त राजासे आहारको लेकर तपोवनमें १८ वर्षतक मौन धारणकर उग्र तप किया, तदनंतर पौष सुदी १४ को केवलज्ञान प्राप्त किया, सौधर्मेंद्रने समवसरणकी रचना की, दिव्यध्वनिके द्वारा प्रभुने उपदेश दिया। ३० हजार देशोमें विहार किया। तदनंतर एक महिनेकी आयु बाकी रहनेपर सम्मेदशिखरपर आनंदकूटमें पहुंचे, वहांपर आत्म-ध्यानमें मग्न होकर चैत्र वदी में एक हजार मुनियोंके साथ मोक्ष-धामको प्राप्त किया।

तदनंतर उस कूटसे ३५ करोड़, ७०५७० मुनियोंने मोक्षलाभ किया। नंतर पूर्णपुरके राजा रत्नशेखर व चंद्रमति रानीके वंशमें विजयभद्र राजा हुआ। उसने अपनी सेना परिवारके साथ सम्मेद-शिखरके आनंदकूटकी यात्रा की, भव्योंकी ही सम्मेद शिखर की यात्रा होती है। अभव्यों की होती नहीं है। तदनंतर यात्राके लिए उत्सुक होकर जेटासेन महाराज अपनी सेनाके साथ गया अपने पुत्र विमलसेनको राज्य देकर दीक्षा ली. तपोमय जीवनसे सर्व कर्मोको नाशकर सिद्धालयको प्राप्त किया। इसी परंपरामें विजयसेन राजाने भी यात्रा की, इस आनंदकूटकी महिमा अगाध है।

—००—

# अथ पंचमोऽध्यायः

तीर्थंकरः पंचमो यः स्मरणात्सुमतिप्रदः ।
वंदे सुमतिनाथं तं सुमतिःयोगमीश्वरम् ॥ १॥
सर्वातिशयसंपन्नमव्ययश्रीनिकेतनम् ।
सुमत्याप्त्यै सदा वंदे सुमतिः कोकलक्षणः ॥ २॥
नमस्तुभ्यं भगवते त्रैलोक्यगुरवे नमः ।
नमो भव्यानंदकर्त्रे सुमतिप्रभवे नमः ॥ ३॥
चतुर्लक्षोन्नत योजने विस्तृतो महान् ।
दीव्यते धातकीखंडो विदेहक्षेत्रसंयुतः ॥ ४॥
तत्र सीतानदी रम्या कल्पवृक्षो तदुत्तरे ।
समृद्धदेशसंभाति नामतः पुष्कलावती ॥ ५॥
पुंडरीकपुरं तत्र रम्यं रम्यजनोपितं ।
धृतिषेणो महान् राजा पातिस्म नगरं च तं ॥ ६॥
महापुण्यप्रभावात् स प्रतापमतुलं गतः ।
अशेषवैरिवंशं च समखंडयदीश्वरः ॥ ७॥
प्रतापः प्रतिघस्तं च तस्य राज्ञोप्यवर्धत ।
सामदानावथो भेददंडौ राजा विधाय सः ॥ ८॥
स्ववशे निखिलां चक्रे प्रजाश्च समरंजयत ।
प्रतिपच्चंद्रवत्तस्य राज्य वृद्धिमुपागतम् ॥ ९॥
सप्तव्यसननाशं च कृत्वा सर्वजनेषु सः ।
वर्णाश्रमोचिताश्चैव राजा धर्मानचालयत् ॥ १०॥
सर्वेषामपि सच्चित्ते भूमीश सः सद्गुणैः ।
जितेंद्रियस्य तस्यासीत् जितेंद्रियगणाः प्रजाः ॥ ११॥
ईतयस्सप्त नो दृष्टाः तस्य देशे सुधर्मिणः ।
निष्कंटकं स्वकं राज्यं अन्वभूत्स महोदयः ॥ १२॥
कदाचित्सौधमारुह्य सिंहासनगतः प्रभुः ।
अपश्यत्तत्पुरं रम्यं सर्वसिद्धिसमृद्धिमत् ॥ १३॥
मृतपुत्रं समादाय गच्छंतं पथि मानवं ।
किंचिन्निरीक्ष्य भव्योसौ तत्क्षणाद्विरतोऽभवत् ॥ १४॥
बुध्वासारं हि संसारं सत्तपः कृतिसमुत्सुकः ।
पुत्राय निरवाणाय राज्यं दत्वा वनं गतः ॥ १५॥

# पांचवा अध्याय

भावार्थः- पंचम तीर्थंकर सबको सुमति देनेवाले श्री सुमतिनाथ को मैं नमस्कार करता हूं ॥१॥ अनेक अतिशयोंको प्राप्त, अक्षय अंतरंग व बहिरंग लक्ष्मी के आस्पद, चक्रवाकपक्षीके चिन्हसे युक्त श्री सुमतिनाथ जिनेंद्रको सुमतिकी प्राप्तिके लिए सदा वंदना करता हूं ॥२॥ भगवन् ! आप तीन लोकके गुरु हैं, भव्योंको आनंद प्रदान करनेवाले हैं, सबको सुमति देनेवाले हैं, अतः आपको नमस्कार हो ॥३॥

चार लाख योजन विस्तारसे युक्त धातकीखंड द्वीपमें विदेह क्षेत्र है, जहां सीता नदी के उत्तर भागमें पुष्कलावती नामक देश है, वहां सुंदर पुंडरीक नामक नगर है। जिसे राजा धतिषेण पालन कर रहा है, महान् पुण्यके प्रभावसे वह राजा पराक्रमी था। सर्व शत्रुवोंको जीतकर सामदान भेद दंडरूपी न्यायनीतिसे राज्यकी समस्त प्रजावोंको उसने वश कर लिया था। दिनपर दिन वह राज्य वृद्धिगत हो रहा था, वर्णाश्रमोचित धर्मोको राजाने स्वयं पालन कर प्रजावोंसे पालन कराया। वह स्वयं जितेंद्रिय था। अनेक सद्गुणोंसे संपन्न था। उसके राज्यमें कोई भी ईति भीति आदि नहीं थी, अतः सबके हृदयमें राजाने स्थान प्राप्त किया, वह अनेक कालतक निष्कंटक राज्यको पालन करते हुए सुखसे काल व्यतीत कर रहा था ॥४॥

एक दिनकी बात है, राजाने अपने महलकी छतपर चढकर नगरकी शोभा को देखनेमें दत्तचित्त था। इतनेमें लोग एक मृतपुत्रके शवको स्मशानकी ओर ले जा रहे थे। उसे देखते ही भव्यात्मा राजा इस संसारसे विरक्त हुआ। सोचा कि यह संसार निश्चित ही असार है, इसमें कोई किसीका नहीं है, यह विचार करते हुए तपके लिए उसका मन उत्साहित हुआ। निरद नामक अपने पुत्रको राज्य देकर दीक्षा वनके लिए प्रस्थान किया, एवं वहां बहुत ही प्रसन्न चित्तसे जिनदीक्षाको ग्रहण किया ॥४-१५॥

भावार्थः- महाव्रतोंको पालन करते हुए अपने देह के स्नेहका मुनिराजने त्याग किया। मोहशत्रुको जीतकर षोडशभावनाओंकी भावना की, एवं घोर तपका आचरण किया, जिसके फलस्वरूप तीर्थंकर नाम कर्मका बंध किया जो अनन्य दुर्लभ है। आयुके अन्तमें सन्यास विधि के द्वारा देहत्याग कर सर्वार्थसिद्धिमें वैजयंत नामक विमानमें अह-मिंद्र देव होकर उत्पन्न हुआ। जिसकी सेवा अनेक देवगण करते थे। ३३ सागरकी जहां आयु है, तेतीस हजार वर्षोंके बाद एकबार मानस आहार है, तेतीस पक्षोंके बाद एकबार श्वासोच्छ्वास है, ४ अंगुलन्यून एक हस्तप्रमाण शरीरको धारण करते हुए शुक्ल लेश्यासे युक्त, सातवें नरकतक के अवधिज्ञानसे संपन्न, वहींतक विक्रिया करने में समर्थ वह देव ब्रह्मचर्यसे युक्त होकर तत्वचर्चामें सदा निरत रहता था।

वहां की आयुपूर्ति करनेमें अब छह महीने बाकी हैं,अहमिंद्र पदमें अनन्य दुर्लभ सुखके होते हुए भी समस्त कर्मोंके नाशके लिए उसका मन सदा आकुलित हो रहा था, इसलिए वह वहांके सुखोंके प्रति अनासक्त होते हुए सदा सिद्धध्यान, सिद्धजप, सिद्धपूजा, सिद्धविषयक चर्चा करते हुए सिद्धोंके समान मालुम हो रहा था ॥१६-२६॥

इस जंबूद्वीपके उत्तम भरतक्षेत्रमें कोसल देशके अयोध्यानामकी [न]गरी है, जिसे मेघरथ नामक राजा पालन कर रहा है। मंगलानामकी [उ]सकी रानी थी, धर्मात्मा राजाने उस रानी के साथ लौकिक सुखका [य]थेष्ट अनुभव किया ॥२७॥२८॥

देवेंद्रने अपने अवधिज्ञानसे जान लिया कि अहमिंद्रका [आ]गमन मंगला रानीके गर्भमें होनेवाला है, इसलिए उसने नगरमें [ए]वं राजालयमें कुबेरको आज्ञा देकर रत्नवृष्टि कराई। सबको उक्त [वृ]ष्टिसे आश्चर्य व आनंद हुआ ॥२९॥३०॥

एकदा श्रावणे मासे द्वितीयायां सिते दले ।
मघायां च निशांते सा मंगला तत्र निद्रिता ॥३१॥
अनन्यसुलभान् स्वप्नान् षोडशैक्षत भाग्यतः ।
स्वप्नस्यांते च मातंगः प्रविवेश तदाननं ॥३२॥
प्रातः प्रबुद्धा साश्चर्या प्रभोरंतिकमागता ।
अपृच्छत्तत्फलं तस्मै स प्राह शृणु वल्लभे ॥३३॥
भविष्यति सुतस्ते हि भगवान् गुणसागरः ।
श्रुत्वा परममोदं सा लेभेऽभूद्गर्भवत्यथ ॥३४॥
एकादश्यां सिते पक्षे चैत्रमासि चतुर्दशे ।
नक्षत्रेऽसौ त्रिनयनः प्रादुरासीज्जगत्पतिः ॥३५॥
स्वावधिर्जन्म तस्याथ बुध्वा देवपतिर्मुदा ।
स देवस्तत्र चागत्य देवमादाय भक्तितः ॥३६॥
स्वर्णाचलं स गतवान् तत्र क्षीराब्धिवारिभिः ।
अभिषेकं चकारास्य सहस्राष्टघटैः शुभैः ॥३७॥
वस्त्रैराभरणैर्देवं संभूष्यागत्य वेष्टितः ।
अयोध्यां भूपभवने संस्थाप्याथ प्रपूज्य तं ॥३८॥
तस्य कृत्वा सुमत्याख्यां देव्यैदेवं निवेद्य सः ।
कृतोत्सवः सुरैः सार्धं प्राप देवालयं ततः ॥३९॥
नवलक्षोमितकोट्युक्त सागरेष्वभिनंदनात् ।
गतेषु सुमतिश्चासीत् तन्मध्यायुर्महाप्रभुः ॥४०॥
चत्वारिंशत्पूर्वलक्षमायो त्रिशतचापमः ।
शरीरोत्सेध आख्यातः तस्य देवस्य चागमे ॥४१॥
स्वर्णकांतिः कोमलांगः पुण्यप्रकृतिरीश्वरः ।
[illegible] शोभानिधुरनुत्तमः ॥४२॥
स [illegible] शरीरो बालचंद्रवत् ।
[illegible] स निरावेद्य ववृधे भूपसद्मनि ॥४३॥
[illegible] पंकजाननः ।
[illegible] ॥४४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४५॥

भावार्थ— एक दिनकी बात है। श्रावण सुदी २ मघानक्षत्रमें रानी थे अंतिम प्रहरमें मंगलकारी सुख निद्रामें थी। तब उसने उत्तम सोलह स्वप्नोंको देखा। स्वप्नके अन्तमें मुखमें गजके प्रवेश होने का भान हुआ। प्रातःकाल उठनेके बाद पतिके समीप पहुँचकर रानीका स्वप्नोंके फलोंका प्रश्न हुआ, तो राजाने कहा कि देवी! तुम्हें तीर्थं-कर तुम्हारे गर्भमें अवतरित होनेवाला है, ऐसा पुत्र तुम्हें प्राप्त होगा। स्वप्नोंके फलको सुनकर वह बहुत ही प्रसन्न हुई।

तदनंतर दिनपर दिन गर्भमें वृद्धि हुई, तदनंतर ९ महिनेके बाद चैत्र सुदी ११ को मघा नक्षत्रमें पुत्ररत्नका जन्म हुआ। अवधिज्ञानसे देवेंद्रने इस वृत्तांतको जान लिया, अपने देवपरिवारके साथ आकर सुमेरुपर्वतपर उन कुमार बालकको अभिषिक्त किया। पुनः वस्त्राभूषणादिसे विभूषितकर अयोध्या नगरीमें बालकको ले गया, वहां बहुत आदरके साथ परिवारके साथ तांडवनृत्य नाचा गया। देवेंद्रने उस समय उस बालकका सुमति ये नामसे अभिधान किया।

नवलाख करोड़ सागरके व्यतीत होनेके बाद अभिनंदन तीर्थं-करके अनन्तर सुमतिनाथ तीर्थंकर हुए। उनकी आयु ४० लाख पूर्वकी थी, ३०० धनुष शरीरका उत्सेध था, स्वर्णके समान कांतिको धारण करनेवाले कोमल शरीरसे युक्त, पुण्यकारी सुमति तीर्थंकर सर्व विधिसे शोभित होने लगे। अत्युत्तमआभूषण मुकुटको धारण करने वाले सुमतिने बाल्यावस्थामें ही अनेक प्रकारकी बालक्रीडाओंसे अनेक प्रकारके आमोद प्रमोदोंसे सबको प्रसन्न किया, एवं दिनपर दिन राजभवनमें बढने लगे।

श्यामकेश, सुंदरमस्तक, सुंदर हस्तकमल, कमलनेत्र आदिको देखनेपर उनका भाग्य उदय दिख रहा था। उन्होंने कर्णमें उत्तम तेजःपुंज कुंडल को धारण किया था, जन्मसे ही उन्हें मतिश्रुत अव-धिनामक तीन ज्ञान थे, कामदेवके समान सुंदर भृकुटिको धारण कर रहे थे, और नीलकमलके समान सुंदर नेत्रको धारण कर रहे थे ॥३१-४५॥

तस्योत्तमश्रिया युक्तः कपोलादर्शकांतिजित् ।
बिंबाधरस्सुरदनः सुकंठः सुहनुस्तथा ॥४६॥
सुभुजास्सुकरा तद्वत् सुवक्षाश्चक्रचिन्हितः ।
गंभीरनाभिस्सर्वांगसुंदरः श्रीनिकेतनः ॥४७॥
कूर्मपृष्ठपदांभोजः सर्वलक्षणलक्षितः ।
विभुः कौमारसंपत्य ऽजयत्कामशतं मुदा ॥४८॥
दशलक्षोक्तपूर्वाश्च कौमारावसरे गतः ।
यौवनाविष्टदेहेऽसौ शुशुभे रूपसागरः ॥४९॥
संप्राप्य पैत्रिकं राज्यं प्रजासरक्षणो सुकः ।
प्रतापजितमार्तण्डो भूम्यां शक्र इवाबभौ ॥५०॥
शुक्ललेश्यायुतः श्रीमाननिष्टविरहः सदा ।
अनारतेष्टसंयोगी गुणपुण्यप्रवृद्धिमान् ॥५१॥
रूपयौवनशीलोच्च–कुल सद्भावशालिनीः ।
सुंदर्यः स्ववशे कृत्वा परमं सुखमन्वभूत ॥५२॥
हिंसाचौर्यद्वयं तस्य राज्ये स्वप्नेपि नैव हि ।
तद्यशस्सुखिनस्सर्वे गायंतिस्म परस्परम् ॥५३॥
एकोनचत्वारिंशब्दिः लक्षपूर्वैस्स राज्यभाक् ।
केनापि हेतुना चित्ते वैराग्यं प्राप शुद्धधीः ॥५४॥
असारं सर्वसंसारं विचार्य विरक्तोऽभवत् ।
सारस्वतस्तुतो भूयः तपस्सारं विचित्य सः ॥५५॥
इंद्रोपनीतां शिबिकां आरुह्य सुरसेवितः ।
सहेतुकवनं प्राप श्रुण्वत्सुरजयध्वनिं ॥५६॥
वैशाखे शुक्लदशमी ★ मघानक्षत्रवासरे ।
सहस्रभूमिपैः सार्धं दीक्षां जग्राह तापसीम् ॥५७॥
दीक्षानंतरमेवास्य मनोवार्ताप्रबोधकं ।
तुर्यज्ञानमभूदन्हि द्वितीये भैक्ष्यमाचरत् ॥५८॥
गतः पुरे सौमनसे पद्माख्यः तत्र भूपतिः
आहारं दत्तवान् तस्मै संप्रापाश्चर्यपंचकं ॥५९॥
कृत्वा मासाधिकं मौनस्थितः सः तपोवने ।
गतकरोगवलान् सर्वान् धैर्यमालंब्य केवलं ॥६०॥

★ वैशाख शुक्ल नवमी इति ग. ग. पुस्तके

भावार्थ- उसका कपोल दर्पणके समान कांतियुक्त था, चंद्रमा
ान सुंदर कांतियुक्त दंत थे, इसी प्रकार कंठ ओष्ठ उनके सुंदर
इसीप्रकार उनकी भुजायें, हाथ, वगैरे सुंदर थे, साथ में हृदर
में चक्रका चिन्ह था, नाभि गंभीर थी, अर्थात् सभी अंगोंसे वह
ालक सुंदर था। अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम लक्षणोंसे युक्त होकर
कालमें ही सैकडों कामदेवको जीतकर वह राज्यपालन कर रहा
दस लाख पूर्व वर्ष उनके कौमार कालमें गये, तदनंतर यौवना-
को प्राप्त वे सौंदर्यसे सुशोभित होने लगे। पैतृक राज्यको पाकर
ने प्रजाजनोंकी रक्षा उत्साहसे की, अपने प्रतापसे सूर्यको उन्होंने
लिया था, जिससे नरलोकमें स्वर्गाधिपतिके समान मालुम हो
े। शुक्ल लेश्यासे युक्त होकर समस्त इष्टसंयोग से अनारत एवं
टसंयोगसे रहित होकर उन्होंने राज्यका अनुभव किया। अपने
पुण्य की वृद्धि करते हुए अनेक रूप यौवन कुलशीलके धारिणी
को वशमें करते हुए उनके साथ यथेष्ट सुखका अनुभव किया॥

उनके राज्यमें हिंसा, चोरी, व्यभिचार आदि स्वप्नमें भी नहीं
नके यशको सभी लोग प्रशंसापूर्वक उल्लेख करते थे, सभी प्रजा-
राज्यमें सुखपूर्वक समय व्यतीत करते थे॥

उनतालीस लाखपूर्व वर्षतक राज्य सुखको अनुभवकर उन्हें किसी
से संसारमें वैराग्य उत्पन्न हुआ, इस समस्त संसारको असार
र उससे सुमति राजा विरत हुए, लौकांतिक देवोंने आकर
की, तत्काल तपोवनमें जानेका विचार किया॥ देवेंद्रके द्वारा
की व्यवस्था हुई, उसपर आरूढ होकर देवेंद्रके द्वारा की गई
स्वीकार करते हुए सहेतुकनामक वनमें प्रवेश किया। वैशाख
० के रोज मघानक्षत्रमें एक हजार राजावोंके साथ जिनेंद्र दीक्षा
ी, दीक्षालेनेंके अनंतर ही सुमतिनाथको मनःपर्यय ज्ञानकी प्राप्ति
रे दिन सौमनस नामक नगरमें पहुंचकर पद्मराजाके महलमें
ग्रहण किया। उस समय पंचाश्चर्य वृष्टि हुई। तदनंतर तपो-
हुंचकर सामायिक चारित्रकी आराधना करते हुए अनेक परीष-
सहनकर मौनसे उग्र तपश्चर्या की॥४६-६०॥

पुनस्तेनोक्तमुर्वीश ! सम्मेदगिरियात्रया ।
मुक्तिश्शीघ्रं भवत्येव तच्छ्रुत्वा हर्षमाप सः ॥७६॥
सत्वरं संघसहितः शुक्लांबरधरो नृपः ।
मोक्षाभिलाषया यात्रा ★ प्रस्थानमकरोत्तदा ॥७७॥
द्वात्रिंशल्लक्षभव्यैश्च सहितो दुंदुभिस्वनं ।
शृण्वन् राजा महोत्साहः सम्मेदगिरिमाययौ ॥७८॥
तत्राविचलकूटं तं अभिवंद्य समर्च्य च ।
अष्टधा पूजया सिद्धान् प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ॥७९॥
समर्प्य राज्यं पुत्राय घातिकर्मक्षयान्नृपः ।
सम्मेदयात्रापुण्येन मुक्तिस्थानमवाप सः ॥८०॥
योगं यत्र विधाय निर्मलवरं कर्मांधकारार्कभं ।
कायोत्सर्गविधानतो मुनिवरैस्सार्धं सहस्रैः प्रभुः ।
सिद्धस्थानमवाप नाम सुमतिः सम्मेदपृथ्वीभृतः ।
कूटायाविचलाय संततं नमस्कारो विधेयो बुधैः ॥८१॥
अविचलकूटध्याना-दविचलसिद्धिं प्रयाति मनुजो यः ।
अविचलभावात्तस्मात् अविचलसिध्यै स्मरन्तु तं भव्याः ॥८२॥

इति देवदत्तसूरिविरचित
सम्मेदशिखरमाहात्म्ये अविचलकूटवर्णनं नाम
पंचमोऽध्यायः समाप्तः

भावार्थ-पुनः मुनिराजने कहा कि राजन्! सम्मेदशिखरको यात्रा करनेसे कर्मनाश होकर मोक्षप्राप्ति हो जावेगी। राजाने शीघ्र ही श्वेत वस्त्रको धारण कर मोक्षकी इच्छासे चतुस्संघके साथ एवं बत्तीस लाख भव्योंके साथ सम्मेदशिखरकी यात्रा की। वहां अविचल कूटकी वंदना अर्चना कर अनंत सिद्धोंको प्रणाम किया। तदनंतर अपने पुत्र को राज्य देकर दीक्षा ली, घातिकर्मको नाशकर अनंतर उक्त यात्राके पुण्यसे मोक्षधामको प्राप्त किया ॥७६-८०॥

कायोत्सर्ग के द्वारा समाधियोगको धारणकर सुमतिनाथ तीर्थंकर प्रभुने हजार मुनियोंके साथ जिस अविचल कूटसे मुक्तिको प्राप्त किया, उस अविचल कूटको सदा बुद्धिमान् लोग नमस्कार करें ॥८१॥

अविचलकूटके ध्यानसे यह मनुष्य अविचल सिद्धिको प्राप्त करता है, इसलिए अविचल सिद्धिकी प्राप्ति के लिए भव्यजन सदा अविचल भावसे उस अविचलकूटका स्मरण करें ॥८२॥

इसप्रकार देवदत्तसूरिविरचित सम्मेदशिखर माहात्म्यमें
अविचलकूटवर्णननामकप्रकरणमें
श्री विद्यावाचस्पति पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री
द्वारा रचित भावार्थदीपिकामें

## पांचवा अध्याय

समाप्त हुआ

---

### पांचवें अध्यायका सारांश

सुमतिनाथ तीर्थंकरका चरित्र है। उनकी मुक्ति सम्मेदशिखरके अविचल कूटसे हुई है। उस कूटसे सुमतिनाथके बाद एक अरब चोरासी करोड चोदह लाख ७ सौ ८१ मुनीश्वरोंने मोक्षधामको प्राप्त किया, इस की वंदनासे एक करोड प्रोषधोपवासका फल मिलता है।

तदनंतर आनंदसेन राजाने इस सम्मेदशिखरकी यात्रा संघसहित की एवं मोक्षधामको प्राप्त किया।

—oo—

# अथ षष्ठोध्याय:

श्रीमत्पद्मप्रभं देवं दीव्यत्कमललांछनम् ।
कायेन मनसा वाचा वंदेहं हृदि सर्वदा ॥१॥
अखंडे धातकीखंडे तत्र पूर्वविदेहके ।
सीता स्रोतस्विनी तस्या दक्षिणे भाग उत्तमे ॥२॥
वत्साख्यो विषय: श्रीमान् चकास्ति सुखसंपदा ।
सुसीमानगरं तत्र धनधान्यसमृद्धिमत् ॥३॥
अपराजित भूपाल: तं पातिस्म स्वतेजसा ।
युवार्क इव चैश्वर्यात् सुरेंद्र इव भूमिग: ॥४॥
शस्त्रास्त्रै: सर्वशत्रूणां जेतायं भूमिमंडले ।
चक्रवर्तिसमो भूत्वा रेजे राजगणार्चित: ॥५॥
राज्यं सप्तांगसंपन्नं पूर्वजन्मार्जितै र्वृषै: ।
बुभोजारोग्यसौख्येन सुखिनां स: शिरोमणि: ॥६॥
तत्पुण्यात्तस्य विषये कृषिकृम्दिश्च याचिता: ।
तत्क्षणादेव चाभूवन् वारिदा वारिदाश्शुभा: ॥७॥
तद्दानादर्थिनां गेहे दारिद्र्यं न ह्यदृश्यत ।
सन्मार्गगा: प्रजास्तस्य दंडार्ह: कोपि नाभवत् ॥८॥
इत्थं स्वसुकृतैस्तत्र राजा बहुविभूतिभि: ।
अवर्णनीयं सौख्यं स लेभे राज्यपदे स्थित: ॥९॥
एकदा सुखुखासीन: सिंहपीठोपरि प्रभु: ।
अभ्रोदितं धनु: दृष्ट्वा विलीनं तत्क्षणे किल ॥१०॥
विरक्तोऽभूदसारं हि संसारमनुमत्य स: ।
समाहूय स्वपुत्रं वै सुमित्राख्यं महामति ॥११॥
प्रबोध्य तं स्वराज्येऽसौ संस्थाप्य विधिवन्नृप: ।
उत्कृष्टपदसंलब्ध्यै वनयात्रां चकार स: ॥१२॥
तत्र नत्वा शिरसा मुनीशं पिहिताश्रवं ।
सहेतुकवने तस्य सकाशाद्दीक्षितोऽभवत् ॥१३॥
एकादशांगसंदीप्तो धृत्वा षोडशभावना: ।
बभूवतीर्थकृद्गोत्रं तपस्तेजोर्कसन्निभ: ॥१४॥
अंते सन्यासविधिना देहत्यागं विधाय स: ।
ऊर्ध्वग्रैवेयके श्रेष्ठे प्रीतिंकरविमानके ॥१५॥

# छठा अध्याय

भावार्थः— कमल चिन्हको धारण करनेवाले श्रीपद्मप्रभ तीर्थंकरको मनवचन कायसे नमस्कार करता हूं ॥१॥

धातकीखंडके पूर्वविदेह में सीता नामकी नदी है। उसके दक्षिण भागमें वत्स देश है, वहां सुसीमा नामकी नगरी है जो धनधान्यसे समृद्ध है ॥ २ ॥ ३ ॥

अपराजितनामक राजा उसे पालन कर रहा था, वह युवा सूर्यके समान तेजःपुंज व ऐश्वर्यसे पृथ्वीमें देवेंद्रके समान था ॥४॥

शस्त्रास्त्रोंसे भूमंडलके सर्व शत्रुवोंको जीतकर चक्रवर्तिके समान था। राजावोंके द्वारा आदरणीय था। पूर्वजन्ममें अर्जित पुण्यके द्वारा सर्व सुखोंका अनुभवकर राज्य का पालन कर रहा था। उसके पुण्यसे उसके देशमें योग्य समय पानी के बरसनेसे किसान भी सुखी थे, उसके दानसे कोई दरिद्री ही नहीं था। सभी प्रजायें सन्मार्गगामी थी, किसीको भी दंड देनेका प्रसंग नहीं आया। इस प्रकार पुण्यके उदयसे वह राजा अनेक वैभवोंसे युक्त होकर राज्यपदमें अवर्णनीय सुखका अनुभव कर रहा था ॥ ५—९॥

एक दिनकी बात है। सुखसे सिंहासनपर बैठा हुआ राजा मेघमंडलमे निर्मित इंद्रधनुष्यको बनते विगडते देखा, उसे देखकर राजा के मनमे वैराग्य उत्पन्न हुआ, संसारको असार जानकर सुमित्रनामक अपने बुद्धिमान् पुत्रको बुलाकर राज्यप्रदान किया, विधिवत् उसे समझाकर राज्यमे स्थापित किया, एवं स्वयं उत्कृष्टपद निर्वाण की प्राप्तिके लिए वन की ओर चला गया। वहां पहुंचकर पिहिताश्रव नामके मुनिके समीप सहेतुक वनमे दीक्षा ली। एकादशांगका पाठी होकर षोडश भावनावोंकी भावना की, एवं तपके तेजसे सूर्यके समान प्रकाशित होते हुए उक्त मुनिराजने तीर्थंकर-प्रकृतिका बंध किया, आयुके अंतमें समाधिमरणके साथ देहत्याग करते हुए ऊर्ध्वग्रैवेयकके प्रीतिकर नामके विमानमे अहमिंद्र देव होकर उत्पन्न हुआ ॥१०—१५॥

अपारसंसारगंभीरो [illegible] ||[illegible]||
ध्यात्वा [illegible] ।
षण्मासः प्रतिपाल्य [illegible] अभूत् सः ||२१||

तत्र जम्बूमहाद्वीपे भरतक्षेत्र [illegible] ।
शुभदेशे शुभपुरी कौशांबी नामतः स्मृता ||२२||

यमुनापूरसंदीप्ता धनधान्यसमाकुला ।
धर्मविन्मानवगणैः सर्वत्र कृतमंगला ||२३||

तत्रेक्ष्वाकुकुले गोत्रे काश्यपे धरणाभिधः ।
राजा बभूव धर्मज्ञो महाबल पराक्रमः ||२४||

तस्य राज्ञी सुसीमाख्या अहो भाग्येन संयुता ।
अर्हमिद्रप्रसूया तु भवित्री समशोभिता ||२५||

तत्तुष्ट्यै स्वावधिज्ञानात् आगमं परमेशितुः ।
ज्ञात्वा तथैव धनदं रत्नवृष्ट्यर्थमिंद्रकः ||२६||

समादिशत्समादिष्टः तेन यक्षेश्वरस्तदा ।
वर्षाभ्रवद्ववर्षासु रत्नानि विविधानि सः ||२७|

माघे कृष्णे दले षष्ट्यां चित्रायां शुभवासरे ।
रत्नपर्यंकसुप्ता सा सुसीमा भूपतेः प्रिया ||२८||

रात्रौ प्रत्यूषति स्वप्नान् षोडशैक्षत भाग्यतः ।
स्वनांते सिंधुरं वक्त्रे प्रविष्टं समलोकयत् ||२९||

अथ प्रबुद्धा सा देवी तत्क्षणं पत्युरंतिके ।
गता प्रसन्नवदना तेनागच्छेति सादरं ||३०||

भावार्थ— अनेक देवोंके द्वारा आदरणीय वह अहमिंद्र ३१ सागरकी आयुको प्राप्त था, दो हाथका शरीर था, एकतीस हजार वर्षोंके बाद एकबार मानसाहार लेता था। ३१ पक्षके बाद एकबार श्वासोच्छ्वास लेता था। ब्रह्मचर्यको धारणकर उत्कृष्ट अवधिको धारण करते हुए अनेक प्रकारकी विक्रियासे संयुक्त सुखसे था। उसीप्रकार उसमें सब कुछ विक्रिया करनेकी शक्ति थी। परंतु कुछ भी नहीं करता था। अपार सुखको भोगते हुए अनेक वैभवोंसे युक्त होकर वह अहमिंद्र अपने कालको व्यतीत कर रहा था।।१६।।१७।।१८।।१९।।२०।।

सदाकाल सिद्धोंका ध्यान करते हुए, पूजा, चर्चा आदिमें समय व्यतीत करते हुए उसकी आयुमें अब छह महीने बाकी रही हैं।।२१।।

जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कौसांबी नामकी नगरी है। जो धन धान्यादि समृद्धिसे युक्त है। धर्मात्मा लोगोंसे युक्त होनेके कारण मंगलरूप है। वहांपर इक्ष्वाकुवंश काश्यपगोत्रमे धरण नामका राजा हुआ, वह धर्मज्ञ था, महान् बलशाली था, पराक्रमी था।।२१–२४।।

उसकी रानी सुसीमा नामकी थी, वह महा भाग्यशालिनी थी। वह अहमिंद्र वहांसे च्युत होकर इसके गर्भमें आनेवाला है। इस बातको अवधिज्ञानसे देवेंद्रने जान लिया। कुबेरको उस नगरीमे और राजालयमें रत्नवृष्टी करनेकी आज्ञा दी। कुबेरने भी छह महीनेतक बराबर राजमहल व नगरमे रत्नवृष्टि की ।।२५–२७।।

एक दिनकी बात है, माघ मासके कृष्णपक्षके षष्ठीके रोज रातको सोती हुई अंतिम प्रहरमे सुसीमा रानीने १६ स्वप्नोंको देखा। स्वप्नके अंतमे उसके मुखमे हाथीके प्रवेशका भास हुआ। प्रातःकालमे जागृत होकर पतिके पास रानी गई, राजाने भी प्रेमसे आओ रानी! कहकर बुलाया ।।२८।।२९।।३०।।

उक्त्वोपविष्टा सत्पीठे बद्धांजलिरुवाच तं ।
स्वामिन् मयोषिसि स्वप्ना षोडशाद्याः समीक्षिताः ॥३१॥
स्वप्नांते मत्तमातंगः प्रविवेश मदाननं ।
श्रुत्वा तां तत्फलं ब्रूहि यथार्थं प्राणवल्लभ ! ॥३२॥
श्रुत्वोदितो नृप स्वामिन् प्रीत्या पुलकितस्तदा ।
प्रोवाच तां श्रृणु प्राज्ञे ! महोद्यत्भाग्यशालिनी ॥३३॥
उदरे ते समायातो महान् देवो जगत्पतिः ।
तं समीक्षिष्यसे देवी समयादतुले दिने ॥३४॥
इति श्रुत्वा तदा देवी महानंदमवाप सा ।
गर्भिणीं तां शिषेवेय प्रतिघलं पुलोमजाः ॥३५॥
शक्रसेव्यो नृपश्चासीदानंदं दुंदुभिस्वनः ।
रत्नवृष्टिः प्रतिदिनं त्रिकालेपि च वर्षति ॥३६॥
एवं देव्या तया मासा नीता नव सुखेन हि ।
स्वभावदीप्तया देव ज्योतिर्देदीप्यमानया ॥३७॥
कार्तिके मासि कृष्णायां त्रयोदश्यां शुभे दिने ।
असूत पुत्रं सा श्रीमदहमिंद्रं महेश्वरं ॥३८॥
तथैवावधितो ज्ञात्वा सौधर्मेंद्रः प्रहर्षितः ।
ऐशानेंद्रसमायुक्तः सगीर्वाणः समाययौ ॥३९॥
समायातस्ततो देवं मात्राज्ञातं शचीकरान् ।
समावाप गतो मेरुं जयनिर्घोषमुच्चरन् ॥४०॥
क्षीरसिंधुजलापूर्णैः अष्टोत्तरसहस्रकैः ।
हेमकुंभैः प्रभुं तत्र स्नापयद्भक्तितोऽर्चयत् ॥४१॥
वस्त्रालंकरणैर्दिव्यैः पश्चादामूष्य तं प्रभुं ।
पुनस्सन्मानयामास ★ महाराजस्य वेश्मनि ॥४२॥
धारोपितं सिंहपीठे पुनस्संपूज्य तत्र तं ।
विधाय तांडवं चित्रं भूपाद्यांतवशीकरं ॥४३॥
तस्य पद्मप्रभाभिख्यां कृत्वा मात्रे समर्प्य च
अशेषदेवतैस्साधं जगाम स्वामरावतीं ॥४४॥
सर्वांगानुपमो देवो देवी देवकुमारकैः ।
सेवितो बालरूपेण चिक्रीड नृपसद्मनि ॥४५॥

★ पुनः स आनयामास इति क. पुस्तके.

भावार्थः– सुमतिनाथ तीर्थंकर के समयसे नव सागरोपमकाल वीतनेपर पद्मप्रभ तीर्थंकर हुए, तीस लाख पूर्वकी उनकी आयु थी। २५० धनुषका श्वेतवर्णका शरीर था। साडे सात लाख वर्षोंका बाल्यकाल उन्होंने पूर्णकर यौवनावस्थाकों प्राप्त किया। तब उन्हे पिता का राज्य मिला। सर्व विकारोंको वे जीतनेवाले थे। धर्मकार्यमे निपुण थे, सभी प्रजावोंको सुख प्रदान करते थें, स्वयं पराक्रमी थें, प्रजावोंके दोषोंको समझाकर दूर करते थे। इस प्रकार बडे आनंदके साथ प्रभूनें राज्य व भोगका अनुभव किया। एकदिनकी बात है कि प्रभु वनक्रीडा के लिए एक उद्यानमें गये ॥४७॥४८॥४९॥

वहांपर एक महिनेंका निवास किया। एक मरे हुए हाथी को देख कर उन्हे वैराग्य का उदय हुआ। उसी समय उन्होने इस संसारकों असार जानकर छोडनेंका निश्चय किया। द्वादश भावनावोंकी भावना की, राज्यकारभार अपने पुत्रपर डाल दिया, तत्काल लौकांतिक देवोने आकर प्रभुकी स्तुती की।

देवेंद्रनें भी अवधिज्ञानसे प्रसंगको जान लिया। आनंदनामक शिविकाको लेकर उपस्थित हुआ। उसपर चढकर प्रभुने देवोंके द्वारा कृत जयघोषके साथ मनोहर नामक वनमें प्रवेश किया। कार्तिक बदी १३ के रोज संध्याकालमें चित्रा नक्षत्रमें प्रभुनें हजार राजावोंके साथ जैनेंद्र दीक्षा के साथ षष्ठोपवासको ग्रहण किया। तत्क्षण प्रभुको मनःपर्यय ज्ञान की प्राप्ति हुई। दूसरे दिन वर्धमान पुर में पहुंचकर धर्मात्मा सोमदत्त राजाके महलमें निर्दोष आहार ग्रहण किया। उस समय वहां पंचाश्चर्य वृष्टि हुई।

तदनंतर छह महीने का मौन ग्रहण कर उत्तमतपका आचरण किया। उग्र तपके प्रभावसे प्रभुके घातिकर्मकें क्षय करनेसे चैत्र सुदी १५ के रोज केवलज्ञानको प्राप्त किया, तब वे अनंत चतुष्टयके अधिपति हुए, तब देवेंद्रकी आज्ञासे कुबेरनें समवसरणकी रचना की, छत्रत्रय के बीच प्रभु आकाशमें सूर्यके समान शोभित हो रहे थे ॥५१-६०॥

भावार्थः- यथाक्रम समवशरणमें द्वादश कोठोंके बीच गंधकुटीमें विराजमान प्रभु देवोंके द्वारा पूजित होकर शरत्काल की चन्द्रमाके समान शोभित हो रहे थे। भव्योंके द्वारा धर्मोपदेशके लिए प्रार्थना करनेपर प्रभुने दिव्यध्वनिसे तत्त्वोंका निरूपण किया। एवं धर्मोपदेश देते हुए हजारों पुण्य देशोंमें भगवान् पद्मप्रभने विहार कर भव्योंका कल्याण किया। जब उनकी आयुमें एक महिनेका काल बाकी रहा तब वे सम्मेदशिखरपर पहुंचे, और दिव्यध्वनीका उपसंहार किया। मोहननामककूटपर शुक्लध्यानयोगमें रहकर समाधि धारण की ॥६१-६५॥

फाल्गुन वदी चौथके दिन प्रतिमायोगमें स्थित प्रभुने हजार मुनियोंके साथ संध्याकालमें सिद्धपदको प्राप्त किया एवं अखंड अनंतानंदरूपी अमृतरसको उन्होंने प्राप्त किया।

तदनंतर उस मोहनकूटसे ९९ करोड ८० लाख ब्यालीस हजार सातसौ २७ मुनियोंने सिद्ध गतिको प्राप्त किया। यह मोहनकूट अनंत महिमाओंसे युक्त है, जो उसकी वंदना करता है वह निश्चयसे भव-सागरसे पार हो जाता है। इस मोहनकूटकी वंदनासे एक करोड प्रोषध उपवास का फल प्राप्त होता है तो सब कूटोंकी वंदनाका फल कौन कह सकता है? ॥६६-७१॥

पहिले सुप्रभनामक राजाने इस कूटकी वंदना की। उसका चरित्र संक्षेपसे कहता हूं, सज्जन लोग सुनें।

जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें वंग नामा देश है, जहां प्रभाकरी नगरी है। वहां सुप्रभ नामका राजा था उसकी रानी सुषेणा थी, जो अनेक सत्यशील आदि गुणोंसे युक्त थी। एक दिनकी बात है। सुप्रभ राजा अपनी इच्छासे बडे आनंदसे वनक्रीडाके लिए अपने परिवारके साथ गया ॥७२-७५॥

भावार्थः— उस वनमें एक चारण मुनि विराज रहे थे। राजाने तीन प्रदक्षिणा देकर वंदना की, और उनके निकट बैठकर प्रार्थना की कि प्रभो ! आपको चारण ऋद्धि कैसे प्राप्त हुई ? तब मुनिराजने कहा कि राजन् ! सम्मेदशिखरजी की वंदनासे मुझे चारण ऋद्धिकी प्राप्ति हुई। तब राजाने कहा कि स्वामिन्! मुझे भी सम्मेदशिखर यात्रा की इच्छा हो रही है। मुनिराजने कहा कि तुम्हें यह यात्रा अवश्य होगी।
यह कहे आनंदसे महलमें आया और यात्राकी तैयारी की। करोडों लोगोंके साथ चतुःसंघको साथमें लेकर, गायक, वादक नर्तक, नर्तकी आदि अनेक परिवार व परिवारके साथ, महोत्सव संपन्न होकर राजा अपने सम्मेदशिखरपर पहुंचकर मोहनकूटकी वंदना की, और अष्ट द्रव्योंसे भक्ति के साथ पूजा की। तदनंतर रतिषेण नामक अपने पुत्रको राज्य देकर मुनिव्रतको धारण किया। और वहींपर दृढ तपश्चर्या करते हुए चौरासी लाख मुनियोंके साथ घातिया कर्मोंको नाशकर निर्वाणपदको प्राप्त हुआ। इस प्रकार यह प्रभाव युक्त मोहन कूटका वर्णन किया गया। इसे विचारकर भव्यगण सदा उसको वंदना करें ॥७६-८५॥
इस प्रकार मोहनकूटको वंदना भाव भक्तिपूर्वक जो करता है वह संसारमें समस्त सुखका अनुभव कर इस संसारके बंधनसे छूटता है। एवं अनंत मुक्तिको प्राप्त करता है ॥८६॥

इसप्रकार देवदत्तसूरिविरचित सम्मेदशिखरमाहात्म्यमें
मोहनकूट वर्णनमें
श्री विद्यावाचस्पति पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्रीकृत
भावार्थ दीपिकामें
छठा अध्याय समाप्त हुआ।

---

## छठे अध्याय का सारांश

मोहनकूटसे पद्मप्रभ तीर्थंकर मुक्तिको गये तदनंतर इस कूटसे ९९ करोड ८४ लाख ४२ हजार सातसौ २७ मुनियोने मुक्तिधामको प्राप्त किया। इस कूटकी वंदनासे एक करोड प्रोषधोपवासका फल मिलता है। इस कूटोंकी वंदना करनेवालोंको क्या फल नहीं मिलेगा। तदनंतर सुप्रभ नामक राजाने भी चतुःसंघके साथ सम्मेदशिखरकी यात्राकर आनंद प्राप्त किया, एवं घातिया कर्मोंको नाशकर उत्तम निर्वाण पदको प्राप्त किया। अमित प्रभावसे यह कूट युक्त है।

# सातवां अध्याय

संसार दुःखसे मुक्तिको प्राप्त करनेवाले श्री सुपार्श्वनाथ भगवानको देवदत्त का नमस्कार है ॥१॥ धर्म, अर्थ, काम, और मोक्षरूपी वर्गके फलको प्रदान करनेवाली उनकी कथाको संक्षेपसे मैं कहता हूं, भव्यगण उसे आदरसे श्रवण करें ॥२॥

प्रसिद्ध धातकी खंड के पूर्वभागमें सीता नामकी नदी है, उसके तटमें वच्छ नामका देश है, जहांपर क्षेमपुर नामका नगर है, जहां राजा पुण्यात्मा नंदिषेण नामका था जिसके चरणको अनेक राजा नमस्कार करते थे ॥३-४॥ उसकी रानी नंदिषेणा थी। उनके साथ सुखसे समय व्यतीत कर रहा था। उसकी प्रजारूपी ... राजा धन्य हो गये थे ॥५॥

उक्त राजाने प्रजाओंका परिपालन पुत्रोंके समान किया। वह परोपकारी, सम्यग्दृष्टी, भाग्यवान, जिनेंद्रभक्त, गुण व कलाओंसे संपन्न, मान्, साहसी वीर था। अपने बंधुओंके साथ धर्मको पालन करते राज्यसुखका अनुभव कर रहा था। सदा याचकोंको दानसे सबको संतुष्ट करता था ॥६-८॥

एक दिनकी बात है, वह राजा अपने महलकी छतपर बैठा हुआ था। और वर्षाके मेघोंको देखकर, देखते देखते नष्ट होते हुए देखकर तत्काल उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ। संसार भी इसी प्रकार असार है। जानकर उसके मनमें विरक्ति उत्पन्न हुई। बड़े आनंदके साथ [illegible] पुत्रको राज्य दिया एवं स्वयं आत्मकल्याणकी इच्छासे जंगलको चला गया। वहांपर अर्हन्नंद नामक मुनीश्वरके निकट जिनेंद्र दीक्षा ग्रहण की, और उनके साथ क्रमपूर्वक ग्यारह अंगका अध्ययन किया, इसीप्रकार षोडश कारण भावनाओंकी भावना भी की, एवं तीर्थंकर प्रकृतिका बंध भी किया ॥९-१०-११-१२-१३॥

अंतमें सल्लेखनाके साथ मरणको प्राप्त कर नवग्रैवेयक के मध्यमग्रैवेयकमें अहमिंद्र होकर उत्पन्न हुआ। सत्ताईस सागरकी आयु प्राप्त थी। दो हस्तप्रमाण उसका शरीर था। तपके प्रभावसे उसने वहां उत्तम सुखको प्राप्त किया ॥१४-१५॥

[illegible] ।<br>
[illegible] ॥१६॥<br>
गतैः [illegible] ।<br>
[illegible] ॥१७॥<br>
[illegible] ।<br>
[illegible] ॥१८॥<br>
जंबूनाम्नि तदा द्वीपे भरते [illegible] ।<br>
काशी देशे सुनगरी [illegible] ॥१९॥<br>
स्वविभूत्या हसंतीव [illegible] ।<br>
तस्यामिक्ष्वाकुवंशे च गोत्र [illegible] ॥२०॥<br>
सुप्रतिष्ठोऽभवद्राजा तेजस्वी धर्मसागरः ।<br>
तद्राज्ञी पृथिवीषेणा सती सद्धर्मशालिनी ॥२१॥<br>
तस्याः शुभांगणे श्रीमद्यागमबुधेन हि ।<br>
आज्ञप्तो देवराजेन धनेशोंवरमार्गगः ॥२२॥<br>
मेघवद्बहुधा रत्न–वृष्टिं षाण्मासिकीं तदा ।<br>
प्रसन्नमनसा चक्रे यक्षवृंदसमन्वितः ॥२३॥<br>
वैशाखशुक्लषष्ठ्यां स विशाखायां सुवेश्मनि ।<br>
रात्रौ सुप्ता प्रभाते तु स्वप्नान् षोडश चैक्षत ॥२४॥<br>
स्वप्नांते स्वमुखांभोज–प्रविष्टं मत्तवारणं ।<br>
दृष्ट्वा देवी प्रबुद्धेयं महाविस्मयमाययौ ॥२५॥<br>
तदैव सांतिकं भर्तुः गता भर्तानुमोदिता ।<br>
तस्मै तानादितःस्वप्नान् श्रावयामास हर्षितः ॥२६॥<br>
तत्फलं श्रोतुकामां तां उवाच धरणीपतिः ।<br>
देवी त्वद्गर्भगो देवो देवेंद्रैरपि वंदितः । ॥२७॥<br>
तं शुभावसरे साक्षात् रक्षंति श्रीनिकेतनं ।<br>
इति श्रुत्वा तदा राज्ञी परमानंदमाप सः ॥२८॥<br>
अदात् दानानि विप्रेभ्यो वचसा प्रार्थितानि वै ।<br>
षट्पंचाशन्मिता देव–कुमार्यो गर्भशोधिकाः ॥२९॥<br>
तद्बोधिकाः तदा तत्र बभूवुर्वासवाज्ञया ।<br>
सेवां तस्याः प्रतिदिनं चक्रुः तच्चित्तमोदिनीं ॥३०॥

भावार्थः—सत्ताईस हजार वर्षोंके बाद एकबार मानस आहार को वह ग्रहण करता था, और २७ पक्षके बाद एकबार श्वासोच्छ्वास लेता था। इसीप्रकार सातवे नरकतक जानेका व जाननेका अवधिज्ञान प्राप्त था, इच्छित सुखको इच्छितविक्रियाशक्तिको प्राप्त करनेपर भी कुछ न करते हुए आनंदसे रहता था ॥१६॥१७॥ सदा काल सिद्धोंका ध्यान करते हुए सिद्ध बिंबोंकी पूजा करते हुए अपना समय व्यतीत करता था,जब उसको आयुमें छह महीनें बाकी थे,तथापि महासुखी था ॥१८॥

जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रके आर्यखंडमे काशी नामक देश है, यहां वाराणसी नामक नगर है, वह नगर सौंदर्यसे स्वर्गपुरीको भी तिरस्कृत कर रहा था। यहां इक्ष्वाकुवंशमे, काश्यपगोत्रमे महान् तेजस्वी सुप्रतिष्ठ नामक राजा हुआ, वह धर्मात्मा था। उसकी रानी धर्मात्मा पृथिवी षेणा नामकी थी॥१९॥२०॥२१॥

देवेंद्रने अवधिज्ञानसे जान लिया कि वह अहमिंद्र(स्वर्गसे आने-वाला देव)यहांपर तीर्थंकर होकर पैदा होनेवाला है, अतः कुबेरको आज्ञा देकर महलके आंगनमे व नगरोंमे छह महीनेतक रत्नवृष्टि कराई।

वैशाख शुक्ल षष्ठी के रोज विशाखा नक्षत्रमें रात्रीके अंतिम प्रहरमे रानी पृथ्वीषेणानें सोलह स्वप्नोंको देखा। स्वप्नके अंतमे अपने मुखमे मत्तगज प्रविष्ट होनेका भी अनुभव हुआ। देवी बहुत हर्षित होकर जाग गई और बहुत आश्चर्यचकित हुई, तदनंतर पतिके पास जाकर सर्व स्वप्नोंका वृत्तांत कहा। और उनके फलको सुननेकी इच्छा प्रकट की। राजानें भी आनंदसे कहा कि देवी! तुम्हारे गर्भसे जो बालक उत्पन्न होनेवाला है वह देवेंद्रके द्वारा भी वंदित है, और देवोंके द्वारा सेवित होगा, इत्यादि विषयको सुनकर रानी बहुत ही प्रसन्न हुई। ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारसे दान दिया। और बादमे देवेंद्रके द्वारा नियुक्त छप्पन कुमारिका देवियोने माताकी सेवा की, गर्भशोधन क्रिया भी की। अनेक देवियां उनको संबोधन करती हुई उनके चित्तको आल्हादित करती थी। उन्हे हर प्रकारसे प्रसन्न करनेके लिए प्रयत्न करती थी। ॥२२-३०॥

भावार्थः—ज्येष्ठ सुदी १२ के रोज उस देवीने तीर्थंकरको जन्म दिया, जो तीन लोकके लिए प्रिय थे। देवेंद्रने अवधिज्ञानसे इसे जानकर अपने देवपरिवार के साथ वहाँ आया॥३१॥३२॥

वहाँ आकर देवेंद्रने प्रसूतिगृहमें इंद्राणीको भेजकर मायामयी बालकको रखकर जिनबालकको मंगाया व मेरु पर्वतपर ले जाकर क्षीरसमुद्रके एक हजार आठ कलशोंसे अभिषेक किया। पुनश्च क्षेमपुरमें ★आनंदके साथ आकर पट्टाविर भी उत्सव मनाया। सुपार्श्वनामका अभिधानकर माताके अंकमें बालकको देकर देवेंद्र अपने परिवार के साथ स्वर्ग लोक चला गया ॥३३॥३४॥३५॥३६॥

पद्मप्रभ तीर्थंकर के बाद ९ हजार कोटि सागरके बीतने के बाद सुपार्श्व तीर्थंकर हुए। बीस लाख पूर्वकी इनकी आयु थी, २०० धनुषप्रमाणका शरीर था। पांच लाख पूर्वकी आयु इनकी बाल्यकालमें बीत गई।

तदनंतर यौवनावस्थाको प्राप्त करनेपर पिताके द्वारा प्रदत्त राज्यको प्राप्त किया। और समस्त पृथ्वीका पालन किया। वह जितेंद्रिय ही नहीं, शत्रुओंको भी उन्होंने जीत लिया। निर्विकार व अनेक गुणोंके वे अधिपति थे ॥३७-४०॥

करोड सूर्य और चंद्रके समान प्रकाशयुक्त थे। लोकके समस्त प्राणियोंके मार्गदर्शक थे, सबके दुःखको प्रभु दूर करनेवाले थे ॥४१।

सर्व प्रकारके सुखके साथ राज्यवैभवको चिरकाल भोगकर किसी कारणसे वैराग्य को प्राप्त हुए। शरीर आदि समस्त परिग्रह नश्वर है। पहिले अनेकबार भोगकर छोडे गये हैं। इसलिए पंचेंद्रिय संबंधी विषयोंमें रत होते हुए व्यर्थ काल व्यतीत किया जा रहा है। मेरे लिए धिक्कार हो, मेरे लिए धिक्कार हो, इसप्रकार कहते हुए पूर्ण वैराग्य को प्राप्त किया। उसी समय लौकांतिक देव आये और हर्ष के साथ उन्होंने उनकी प्रशंसा की, और वैराग्य की अनुमोदना की। ॥४२–४५॥

---

★ वाराणसीका अपरनाम क्षेमपुर अथवा सिंहपुरी वाराणसीके निकट है।

मोक्षमैच्छोदिति तदा ज्ञात्वा देवैः सह सागतो ।
मनोगतिं तदा देवैः कृतां तां शिबिकां प्रभुः ॥४६॥
समारुह्य तदासत्तं सहेतुकवनं गतः ।
सहस्रभूमिपैः सार्धं तत्र वेलोपवासकृत् ॥४७॥
सर्वसिद्धान् नमस्कृत्य केशानालुंच्य मुष्टिभिः ।
पंचभिर्विधिवत्तान दीक्षां जग्राह हर्षतः ॥४८॥
ज्येष्ठशुक्लदले तद्वत् द्वादश्यां सुतिथौ प्रभुः
विशाखनाम्नि नक्षत्रे दीक्षितोऽभवदञ्जसा ॥४९॥
परेऽन्हि सोमखेटाख्यं पुरं भिक्षार्थमागतः ।
महेंद्रदत्तभूपाल-दत्तमाहारमुत्तमं स ॥५०॥
आश्चर्यपंचकंवाप्तं गृहीत्वा कृतकृत्यतां ।
तस्मिन्नारोप्य भूयोसौ तपोवनमुपागतः ॥५१॥
मौनमूर्द्धिविधेपूच्चैः तपो देशेषु घातपत् ।
महोग्रतपसा दीप्तो ग्रीष्मार्क इव स व्यभात् ॥५२॥
फाल्गुणे कृष्णषष्ठ्यां च संध्यायां घातिघातनात् ।
महोग्रतपसा देवः केवलज्ञानमाप सः ॥५३॥
देवैः समवसारोस्य निर्मितो वासवाज्ञया ।
रराज तत्र सूर्येंदु-विजयी ज्ञानतेजसा × ॥५४॥
द्वादशोप्यत्र कोष्ठेषु श्रीमदगणधरादयः ।
सर्वे धर्मुर्यथासंख्यं स्थिता देवार्चने रताः ॥५५॥
तत्र स्थितः स भगवान् संपृष्टो मुनिभिः तदा ।
उच्चार्य दिव्यनिर्घोषं कुर्वन् धर्मोपदेशनम् ॥५६॥
श्रोटयन् संशयतरुं तमो गाढं प्रभेदयन् ।
ज्ञानप्रकाशमतुलं वर्धयन् भव्यमानसे ॥५७॥
देवैर्नवनवस्तोत्रैः स्तुतः संपूजितो मुदा ।
धर्मक्षेत्रेषु सर्वेषु विजहार दयानिधिः ॥५८॥
एकमासावशिष्टायुः सम्मेदाख्याचलोपरि ।
प्रभासनाम्नि सत्कूटे नाद संहृत्य तस्थिवान् ॥५९॥
शुक्लध्यानधरस्तत्र फाल्गुने चासिते दले ।
सप्तम्याम् अनुराधोडु-संभूतायां स ईश्वरः ॥६०॥

× विजयी स: स्वतेजसा इति क. पुस्तके

भावार्थः— देवेंद्रको भी अवधिज्ञानसे ज्ञात होनेपर देव परिवार के साथ वहां वह उपस्थित हुआ, मनोगति नामक देवनिर्मित शिविका वहां उपस्थित हुई। उसपर आरूढ होकर भगवान् सहेतुक वनमें गये, और वहांपर हजार राजावोंके साथ, समस्त सिद्धोंको नमस्कार कर नमः सिद्धेभ्यः उच्चारण करते हुए पंचमुष्टि लोच किया और विधि के साथ दीक्षाको ग्रहण किया ॥४६–४८॥

ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशीके दिन विशाखा नक्षत्रमें प्रभुने जिनदीक्षा ग्रहण की ॥४९॥ दूसरे दिन सोमखेट नामक ग्राममें भिक्षाके लिए पधारे. महेंद्रदत्त नामक राजाने विधिपूर्वक दान किया,उस समय देवोंने पंचाश्चर्य वृष्टि की, और राजा महेंद्रदत्तने अपनेको धन्य माना। प्रभूने आहार लेकर वनमे प्रवेश किया। वहांपर मौनसे रहकर नाना विधिसे तपोंका आचरण करते हुए अनेक देशोमें विहार किया। अनेक उग्र तपोंका आचरण करते हुए तपके तेजसे प्रभु ग्रीष्म कालके सूर्यके समान तेजःपुंज होकर दिखने लगे।

तदनंतर फाल्गुन वदी षष्ठी के रोज संध्याकालमें उन्होंने उग्र तपसे घाति कर्मका नाश कर केवलज्ञानको प्राप्त किया। उसी समय देवेंद्रने कुबेरको आज्ञा देकर समवसरणकी रचना कराई, वहांपर प्रभु विराजमान हुए। यथावत् गणधरादियोंसे युक्त बारह कोष्ठोंसे सुशोभित होकर दिखने लगे। मुनिगणादियोंके द्वारा आत्महितकी पृच्छना होनेपर भगवान्‌की दिव्यध्वनि खिरी, धर्मोपदेश होने लगा, उससे लोगों [illegible]शय दूर हुआ, अज्ञान अंधकार विघटित हुआ। भव्योंमें ज्ञानका प्रकाश बढने लगा। देवोंने प्रभुकी अनेक प्रकारसे स्तुति की, दयानिधि प्रभुने सर्व धर्मक्षेत्रोंमें विहारकर धर्मवर्षा की, ॥५०–५८॥

एक महिनेकी आयु अवशेष रहनेपर प्रभु सम्मेदशिखरके प्रभास नामके कूटपर चले गये वहां दिव्यध्वनीको बंदकर शुक्लध्यानमें आरूढ होकर स्थित हो गये। तदनंतर फाल्गुण वदी सप्तमीके रोज अनुराधा नक्षत्रमें प्रतिमायोगमें स्थित होकर समस्त अघातिया कर्मोंका नाशकर हजार मुनियोंके साथ उन्होंने सिद्धगतिको प्राप्त किया ॥५९–६१॥

सर्वकर्मक्षयं कृत्वा प्रतिमायोगमास्थितः ।
सहस्रमुनिभिः सार्धं कैवल्यपदमाप्तवान् ॥६१॥

एकोनपंचाशत्कोटि-कोटयः पश्चादमुष्य वै ।
कोट्यशीतिचतुः प्रोक्ता द्विसप्तति च लक्षका ॥६२॥

सहस्रसप्तकं तद्वत् द्विचत्वारिंशदुत्तरा ।
सप्तशत्युग्रतपसा इति संख्या प्रमाणिता ॥६३॥

प्रभास कूटान्मुनयो घातिकर्मक्षयाल्लघु ।
संप्राप्य केवलज्ञानं तस्मात्सिद्धालयं गताः ॥६४॥

उद्योतकनरेंद्रेण तत्पश्चाद् भावितो गिरेः ।
सम्मेदस्य कृता यात्रा वक्ष्ये तस्य कथां शुभां ॥६५॥

जंबूद्वीपे भारतेस्मिन् क्षेत्रे वत्सोपवर्तते ।
कौशांवी नगरी रम्या दिव्योपवनशोभिता ॥६६॥

विचित्रवापिका तद्वत् विचित्रसरसीयुता ।
नारीभिः सहिता यत्र पौराः पुण्यविशारदाः ॥६७॥

शीलसम्यक्त्वसंपन्नाः सर्वे सद्गुणशालिनः ।
जैनधर्मोज्वलाः शुद्धा दयाविमलमानसाः ॥६८॥

तस्यां उद्योतको राजा सर्वशास्त्रविशारदः ।
राज्ञी पतिव्रता नाम्नि सुशीला तस्य चाभवत् । ॥६९॥
केनापि कर्मणा तेन तस्य पूर्वार्जितेन वै ।
कुष्ठोत्पत्तिरभूद्देहे संतप्तस्तेन सोऽभवत् ॥७०॥
सुदुःखितेन मनसा नानासौख्यरसान्वितं ।
राज्यं विहाय राजासौ वनवासं चकार सः । ॥७१॥
पतिव्रता सापि देवी गत्वा तदनु काननं ।
पतिशुश्रूषणं भक्त्या चकार हृदि दुःखिता ॥७२॥
एकदारिजयो मित्रंजयो द्वौ चारणौ मुनी ।
आयांतौ वीक्ष्य राजासौ सप्रियश्चाभ्यधावतः ॥७३॥
स्वीयां व्यवस्थां भूपालः कथयस्वास्मदग्रतः ।
तत् श्रुत्वा तं मुनिं प्राह भूपो बाष्पांबुलोचनः ॥७४॥
भिः परिक्रम्य भक्त्या तं प्रणनाम शुचार्जितः ।
वं दृष्ट्वा तौ सच्चारणौ पप्रच्छतुरिम तदा ॥७५॥

तदनंतर उनंचास कोडाकोडी ८४ कोटी, ७२ लाख, सात हजार, ७४२ साधुवोंने उग्र तपका आचरण कर उस प्रभास कूटसे घाति व अघाति कर्मोंको नाशकर मुक्ति स्थानको प्राप्त किया ॥६२-६४॥

तदनंतर उद्योतक नामके राजाने भावके साथ सम्मेदपर्वतकी वंदना की, उसकी शुभ कथाको अब मैं कहता हूं॥६५॥

इस जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें वत्स नामका देश है। जहां कौशांबी नामकी रम्य नगरी है जो दिव्य उद्यान वगैरेसे शोभित है। वहांपर नाना प्रकारकी बावडियां अनेक सरोवर अनेक नदियां एवं नारियोंके साथ पुण्यशील पुरुष सुखसे समय व्यतीत कर रहे हैं। वे प्रजाजन शील सम्यक्त्वसे संपन्न हैं। अनेक भोगोंसे युक्त हैं। उज्वल जैन धर्मको धारण करते हुए चित्तमें दयाधर्मको पालन करते हैं। वहांपर उद्योतक नामक राजा था। वह समस्त शास्त्रोंमें पारगामी था। उसकी पतिव्रता रानी सुशीला नामकी थी। जो उसके अनुरूप धार्मिक व सद्गुण संपन्न थी। ॥६६-६९॥

किसी पूर्व कर्मके उदयसे उस राजाके शरीरमें कुष्ठ रोग की उत्पत्ति हुई, जिससे वह वह बहुत ही दुःखी हुआ। उस दुःखसे पीडित होकर वह राजा अनेक सुखोंसे युक्त राज्यका भी परित्यागकर वनवासको चला गया। राजाके वनवास जानेपर पतिव्रता सुशीलाने भी उसका अनुकरण किया अर्थात् वह भी वनवासको चली गई। वहांपर रहकर उसने बडी भक्तिसे पतिकी शुश्रूषा की, ॥७०-७२॥

एक दिनकी बात है, उस वनमें अरिंजय व मित्रंजय नामके दो चारणमुनि आये, उनको देखकर राजा अपनी पत्निके साथ उनके पास दौडते गया। वहां पहुंचनेपर अपनी सारी व्यथाको कहनेके लिए मुनि-राजने आज्ञा दी, उसे सुनकर राजाने आंसू बहाते हुए निवेदन किया। सबसे पहिले तीन प्रदक्षिणा मुनिराजको दी, और प्रणाम किया। मुनींद्रोंने भी बहुत करुणाके साथ उसे [illegible] किया।७३-७५।

भावार्थः-तब राजाने कहा कि हे मुनिशार्दूल ! मैंने पूर्व जन्ममे ऐसा कौनसा पाप किया था, जिससे मुझे इस जन्ममे कुष्ठरोग हो गया. इसे सुनकर मुनिनाथने कहा, हे राजन् ! सुनो ! तुम्हारा पूर्व वृत्तांत कहता हूं।

इसी नगरमें पहिले सोमदत्त नामका ब्राह्मण रहता था। वह बहुत बडा विद्वान् था, परन्तु विद्याके अहंकारसे मत्त था। किसी भी मुनिको देखनेपर नमस्कार नहीं करता था ॥७६-७८॥

एक दिनकी बात हैं, ग्रीष्म कालमे एक मुनिराज भव्योंके द्वारा वंदनीय थे, आहारार्थ आये। प्रभाचन्द्र नामके श्रेष्ठी जो मुनिभक्तिसे युक्त था, उन्हे आहारदान दिया, एवं नमस्कार पूजा कर भक्ति की।

सोमदत्तविप्रने उक्त श्रेष्ठीको मुनिराजको आहार दान देते हुए देखकर हास्य किया, तब श्रेष्ठीने सोमदत्तको प्रश्न किया कि मुनियोंको दान देनेसे क्या फल मिलता है ? यथार्थमे विचार कर कहियें। तब उक्त सोमदत्तनें द्वेषवश कहा कि जो ऐसे साधुवोंको आहार देता है, वह कुष्ठ व्याधिसे पीडित होता है, इस बातको सुनकर वह श्रेष्ठी धैर्य गलित हुआ और पश्चात्ताप करने लगा। तदनंतर उस मुनिनिंदा के कारण वह सोमदत्त ब्राह्मण प्रथम नरकमे गया, वहां अनेक प्रकारके दुःखोंको अनुभव किया ॥७९-८५॥

तदनंतर अपने अशुभ कर्मके प्रति पश्चात्ताप करते हुए अपनी आत्मकी निंदा की, बार बार दुःख करते हुए दुर्गतिसे मृत्युको प्राप्त किया। उस पश्चात्तापके पुण्यसे यहां आकर वही जीव तुम उद्योतक होकर उत्पन्न हुआ। इस बातको निश्चयरूपसे जानो। तुमने मुनियोंको आहार दान देनेसे कुष्ठरोगी होता है, ऐसा कहा, अतः उसके फलसे आज तुम कुष्ठरोगी होकर पैदा हुए, नीच कर्मोंके विचारसे उत्पन्न कर्मके फलको अवश्य भोगना ही पडता है ॥८६॥८७॥८८॥

इस प्रकार अपनें आत्मभवको मुनिके मुखसे सुनकर अपनेको धिःकार करते हुए, हाथ जोडकर पुनः मुनिसे प्रार्थना की कि मुनिवर्य ! मुझे ऐसी कोई यात्रा बताईये जिससे मैं इस दुष्ट कुष्ठरोगसे छूट जाऊं, एवं इस दुःखसागरसे भी छूट जाऊं ॥८९॥९०॥

भावार्थ-इस मुनिराजने कहा कि राजन्! भक्ति भावको धारण कर भावपूर्वक सम्मेदशिखरकी यात्रा करो, तुम्हारा यह रोग दूर हो जायेगा। ऐसे सुनकर वह राजा उद्योतने बहुत प्रसन्न होकर चतुर्विध संघके साथ सम्मेदशिखरकी यात्राके लिये प्रयाण कर भावपूर्वक प्रभासकूटकी वंदना की, तथा अष्टविध द्रव्योंसे जिनेंद्रकी पूजा की, उस कारण ही उसका शरीर कुष्ठरोगसे रहित हुआ। तब प्रभासकूटकी महिमाको जानकर राजा विरक्त हुआ। उसी समय वहांपर ३२ लाख मनुष्योंके साथ अपने राज्यको सुप्रभ नामके पुत्रको देकर दीक्षाको ग्रहण किया, मुनिमार्गको अनुसरण करते हुए उसने प्रमादसे घातिया कर्मोंका नाश किया ॥१९२-१९६॥

घातिया कर्मोंका नाश कर केवलज्ञानको प्राप्त किया, तथा मोक्ष लक्ष्मी पाकर संसारसमुद्रको पारकर सिद्धिको प्राप्त किया, उसी प्रभास कूटसे १६ लाख मुनियोंने सिद्ध अवस्थाको प्राप्त किया। प्रभास कूटकी वंदनाके फलसे ३२ करोड प्रोषधोपवासोंका फल प्राप्त होता है। सभी कूटोंकी वंदना भक्तिपूर्वक करनेवालोंके फलका कौन वर्णन कर सकता है? ॥१९७-२००॥

जिस प्रभास कूटसे भगवान् सुपार्श्वनाथ प्रभुने सिद्धस्थानको प्राप्त किया, उस कूटकी वंदनासे संसारमें भोग एवं परंपरासे मुक्ति दोनों प्राप्त होते हैं, उस प्रभास कूटको मैं भक्तिसे नमस्कार करता हूं ॥२०१॥

इसप्रकार देवदत्तसूरिविरचित सम्मेदशिखरमाहात्म्यमें
प्रभासकूट वर्णन नामक प्रकरणमें
श्री विद्यावाचस्पति पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्रीकृत
भावार्थ दीपिकामें
**सातवां अध्याय समाप्त हुआ**

---

## सातवें अध्यायका सारांश

प्रभास कूटसे सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर मुक्तिको प्राप्त हुए. सुपार्श्वनाथका चरित्र लिखकर ग्रंथ कर्ताने इस प्रभास कूटसे ८४ कोटी ७२ लाख ७ हजार ७४२ मुनियोंने मुक्ति प्राप्त की ऐसा निर्देश किया है। नंतर कुष्ठरोगसे पीडित उद्योतकने यात्राकर कुष्ठरोगसे निवृत्त हुआ ऐसा भी उल्लेख किया है। प्रभासकूटकी महिमा अचिन्त्य है।

--oooo--

# आठवां अध्याय

भावार्थः— समस्त भव्यरूपी भ्रमर (समूह) जिनके चरण कमलकी सेवा करते हैं उन चन्द्रप्रभ भगवान् के चरणोंको कल्याण की भावनासे सदा नमस्कार करता हूं। श्री चन्द्रप्रभ भगवान्का पूर्वभव कहता हूं, जिसके श्रवण करनेसे समस्त पापकी हानि होकर पुण्यका उदय होता है। पहिले श्रीवर्मा नामक राजा हुआ, नंतर श्रीधर राजा होकर उत्पन्न हुवा, तदनंतर अजितसेन नामक प्रख्यात राजा हुआ ॥१–३॥

अजितसेन राजाने दीक्षा लेकर दुर्धर तपश्चर्या की, अन्तमे सन्यास मरणसे देह त्यागकर सोलहवे स्वर्गमें वैभव संपन्न देव हुआ। बाईस सागरोपमकी आयुको पाकर देवांगनावोंको आनंदित करते हुए स्वर्ग सुखको यथेष्ट अनुभव किया ॥४॥५॥

इधर घातकीखंडके पूर्व विदेहमे सीता नदीके दक्षिण भागमे मंगलावती नामक देश है, वहां रत्नसंचय नामक नगर है। वहांपर महान् भाग्यशाली कनकप्रभ नामका राजा राज्य करता था, उसकी पत्नी महान् पुण्यशालिनी कनकवल्लभा थी। वह देव १६ वे स्वर्गसे च्युत होकर उसके गर्भमे पुत्र होकर उत्पन्न हुआ। वह अपने सद्गुणोंसे युक्त होकर पद्मनाभके नामसे प्रसिद्ध हुआ। और थोडे ही समयमे पूर्वपुण्योदयसे अनेक प्रकारकी विद्यावोंका अध्ययन किया ॥७॥८॥९॥

कनकप्रभ राजाने उस सुयोग्य पुत्रको यौवनावस्था आते ही राज्य प्रदान किया। और स्वयं विरक्त होकर मनोहर नामक वनको गया। वहां श्रीमंधर नामक मुनि की वंदना कर उनसे उस तपोवनमें जैनेंद्र दीक्षा ली, उसी समय पद्मनाभने भी जिनागममे प्रतिपादित श्रावक व्रतको ग्रहण किया एवं निरतिचार रूपसे पालन किया ॥१०॥११॥१२॥

पूर्वपुण्यके द्वारा पापरहित वृत्तिवाला वह राजा निष्कंटक रूपसे राज्यका पालन करते हुए न्यायनीतिसे प्रजावोंकी रक्षा की एवं समस्त भोगोंका अनुभव किया, एवं अपने पराक्रमसे सर्व प्रजावोंको निर्भय बनाया।

एक दिनकी बात है। वनपालने आकर राजाको समाचार दिया कि श्रीधर मुनि उद्यानमें आये हैं। राजा भी दर्शन के लिए उत्सुक हुआ। ॥१३॥१४॥१५॥

तत्रैव स्वसमाजेन सहितस्तत्क्षणात् नृपः ।
गतो मुनिसमीपं स नत्वा स्तुत्वा मुनीश्वरं ॥१६॥

तत्सकाशात् जैनधर्मान् श्रुत्वा संसारमीश्वरः ।
असारं मनसा ज्ञात्वा विरक्तोभूत् स मानसे । ॥१७॥

राज्यं सुवर्णनामाय स्वपुत्राय समर्प्य सः ।
बहुभिर्भूमिपैः सार्धं दीक्षां जैनीं समग्रहीत् । ॥१८॥

श्रुत्वैकादशसंख्यानि तत्रांगानि स भावनाम् ।
भावयित्वा षोडशांतः बभूव किल तीर्थकृत् ॥१९॥

शतक्रांतस्य पट्पंचाशन्मितानि च व्रतानि सः ।
जैनान्यादाय विपिने तप उग्रं चकार सः ॥२०॥

अंत्ये सन्यासविधिना देहत्यागं विधाय सः ।
सर्वार्थसिद्धिगेव्यत्र प्राप्तोयमहमिंद्रताम् ॥२१॥

त्रिंत्रिंशत्सागरमितं प्राप्यायुः तत्पदोचितं ।
सर्गं विधाय सिद्धानां स्मरणे तत्परोऽभवत् ॥२२॥

अहमिंद्रसुखं दीर्घं भुंजानोसौ प्रतिक्षणं ।
अभूत् षण्मासशिष्टायुः महानिर्मलकांतिभृत् ॥२३॥

तदा जंबूमतिद्वीपे शुचि क्षेत्रे च भारते ।
काशीदेशे चंद्रपुरी स्वसमृद्धयालकेव सा ॥२४॥

अस्ति तत्रेक्ष्वाकुवंशे गोत्रे काश्यप उत्तमे ।
महासेनाभिधो राजा बभूवाद्भुतभाग्यभृत् ॥२५॥

लक्ष्मणा नामतः तस्य देवी प्रोक्ता सुलक्षणा ।
तस्याः गर्भानि देवेंद्रनिर्देशात् अलकाधिपः ॥२६॥

प्राणमासिकीं रत्नवृष्टिं मेघवत्समपागतः ।
[illegible] पत्नीः महिषी सार्धं गंजैर्देवैश्च ॥२७॥

सुप्ता लक्ष्मणा देवी चैत्रपक्षे सितेतरे ।
[illegible] पूर्वमसावर्ण्यं स्वप्नानालिन्न प्रभातके ॥२८॥

दृष्ट्वा [illegible] स्वप्नान् षोडश चैतत ।
[illegible] मनयारणः ॥२९॥

[illegible] राजा सा [illegible] ।
[illegible] श्रुत्वा [illegible] मानते ॥३०॥

भावार्थः– उसी समय अपने परिवारके साथ राजा मुनिराजके समीप गया। और उनको नमस्कार कर उनकी स्तुति की। उनके धर्मके उपदेशको सुनकर उसी समय राजाके मनमें विरक्ति उत्पन्न हुई। सुवर्णनाभ नामक पुत्रको राज्य देकर मुनिदीक्षाको ग्रहण किया ॥१६–१८॥

वहां एकादशांग शास्त्रोंको सुनकर बारह अनुप्रेक्षाओंको चिंतन कर षोडशकारण भावनाओंकी भावना की। एवं तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया। (षोडशकारणभावना तीर्थंकर प्रकृतिके बंधका कारण है)

मुनि अवस्थामें अनेक प्रकारके व्रतोंको ग्रहणकर घोर तपश्चर्या की, अन्तमें सन्यास विधिसे देहत्यागकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र देव होकर उत्पन्न हुआ। तेंतीस सागरोपमकी आयुको पाकर सदा सिद्धोंका स्मरण करते हुए अहमिंद्रपदके दिव्य सुखको वह अनुभव कर रहा था। अब छह महिनेकी आयु उसकी बाकी रह गई है ॥१९–२३॥

जंबू द्वीपके भरत क्षेत्रमें काशी देशमें चंद्रपुरी नामकी नगरी है। वह अपनी समृद्धिसे कुबेरकी नगरी अलकापुरीके समान थी। वहांपर इक्ष्वाकुवंश उत्तमकाश्यप गोत्रमें महासेन नामक राजा बहुत बड़ा भाग्यशाली राज्य कर रहा था। उसकी पत्नी लक्ष्मणा थी जो नामके अनुसार अनेक शुभलक्षणोंसे युक्त थी। उसके घरपर उक्त अहमिंद्र तीर्थंकर होकर जन्म लेनेवाला है, यह जानकर देवेंद्रने कुबेरको आज्ञा देकर छह महिनेतक रत्नवृष्टि कराई, मेघगर्जना के बाद जलवृष्टिके समान यह रत्नोंकी वृष्टि हुई ॥२४॥२५॥२६॥२७॥

एक दिन लक्ष्मणा देवीने चैत्रकृष्ण पंचमी के रोज ज्येष्टा नक्षत्रमें प्रभात समय सोती हुई १६ स्वप्नोंको देखा, स्वप्नके अन्तमें उसके मुख कमलमें मदोन्मत्तहाथीका प्रवेश हुआ। प्रातः अपने पतिके पास पहुंचकर स्वप्न वृत्तांतको निवेदन किया, एवं पतिसे उन स्वप्नोंके फलको सुनकर वह बहुत ही प्रसन्न हुई ॥२८॥२९॥३०॥

भावार्थ– गर्भमें अहमिंद्र जीवको धारणकर वह शरत्कालकी चंद्रमा के समान शोभित होने लगी। तदनंतर पौष शुक्ल एकादशीके रोज पुत्ररत्नको जन्म दिया। जन्मत: ही उक्त त्रिलोकीनाथ प्रभुको मतिश्रुत अवधिनामक तीन ज्ञान थे, उसी समय सौधर्मेंद्र ईशानेंद्र के साथ आकर जिनबालकको साथमें लेकर मेरु पर्वतपर गया। उसने क्षीर समुद्रसे लाये गये १००८ सुवर्ण कलशोंसे अभिषेक किया। उस समय देवोंने जयजयकार किया, तदनंतर पुनश्च वहीपर जन्मस्थानमें पहुंचाया। दिव्य वस्त्राभरणोंसे बालकको अलंकृत किया, एवं राजांगणमें उक्त बालकके सामने देवेंद्रने तांडव नृत्यको किया। साथ ही उक्त बालकका नाम चंद्रप्रभ रखकर बड़ी प्रसन्नताके साथ लक्ष्मणा माताके वशमें दिया। एवं बार बार नमस्कार करते हुए अपने परिवारके साथ वह स्वर्गको चला गया ॥३१–३७॥

वह जिनबालक अपनी कांतिसे चंद्रको भी जीतकर जगत्के संतापको दूर करते हुए राजमहलमें शोभित हो रहा था। उसकी आयु दस लक्ष पूर्वोकी थी, कायका उत्सेध १५० धनुष्य प्रमाण था, २॥ लक्ष पूर्व वर्ष के बाल्यकालमे अपने बालकोचित क्रीडाओंके द्वारा बिताकर सबको आनंदित किया। कुमारकाल जाकर यौवनावस्था प्राप्त होनेपर पिताके द्वारा प्रदत्त राज्याभिषेक हुआ। राजाके आसनपर विराजमान होकर धर्मवारिधि वह भगवान् सर्व कार्योंको अपने मंत्रियोंसे विचार विनिमयकर न्यायपूर्वक करते थे ॥३८–४३॥

उनका सुख देवेंद्रसे भी बढकर था, उन्होंने प्रतिक्षण पूर्व जन्मके संचित पुण्यके उदयसे नानाप्रकारके सुखोंका अनुभव किया ॥४४॥

एक दिनकी बात है, राजा अपने महलके छतपर सुखसे सरस सल्लाप करते हुए बैठे थे। उसी समय उल्कापातको देखकर उनके मनमें विरक्ति उत्पन्न हुई ॥४५॥

ब्रह्मर्षिभिस्तदेवेत्य वंदितः संस्तुतः प्रभुः ।
राज्यं श्रीवरचंद्राय सुपुत्राय समर्पयत् ॥४६॥
देवोपनीतां शिविकामारुह्य सुरसुंदरीं ।
देवैरूढां वनं गत्वा विधिवद्दीक्षितोऽभवत् ॥४७॥
पौषस्य कृष्णैकादश्यां अनुराधोडुनि ध्रुवं ।
तत्र वेलोपवासेन सहस्रक्षितिपैः सह ॥४८॥
दीक्षां गृहीत्वा सोऽन्यस्मिन् दिवसे नलिनं पुरं ।
चतुर्थबोधसपन्नो भिक्षार्थः पर्यटन् प्रभुः ॥४९॥
सोमदत्तो नृपस्तत्र भक्त्या संपूज्य तं प्रभुं ।
अदादाहारममलं पंचाश्चर्याणि चैक्षत ॥५०॥
पुनर्मौनं समादाय तपोवनगतो विभुः ।
महाव्रतानि पंचासौ पालयामास धर्मवित् ॥५१॥
संभृत्य पंचसमितिं गुप्तित्रितयमीश्वरः ।
त्रयोदशमिदं भूयः चारित्रं समुपागमत् ॥५२।
ततः स्वचित्ते संधार्य शुक्लध्यानं चतुर्विधं ।
कृष्णफाल्गुणसप्तम्यां पंचमं ज्ञानमाप सः ॥५३॥
ततः शक्राज्ञया देवनिर्मिते परमाद्भुते ।
गते समवसारोऽसौ व्यराजत रविर्यथा ॥५४॥
यथोक्तदत्तसेनाख्य-गणेंद्राद्यैस्तदाखिलैः ।
पूजितो मुनिसंपृष्ठो सदिव्यध्वनिमाकरोत् ॥५५॥
तं कुर्वन् सुकृतक्षेत्रविहारी मासमात्रकं ।
स्वायुर्विचार्य निर्व्यानः सम्मेदाचलमाययौ ॥५६॥
घटांतललिते कूटे सहस्रमुनिभिस्सह ।
शुक्लाष्टम्यां स भाद्रस्य निर्वाणपदमाप्तवान् ॥५७॥
चतुःपराशीतिकोट्यर्बुदा द्विसप्ततिकोटयः ।
अशीतिलक्षाश्चतुरशीति साहस्रकानि च ॥५८॥
पंच पंचाशत्पराणि तथा पंचशतानि च ।
एतत्संख्योदीरिताश्च चंद्रप्रभविभूरनु ॥५९॥
घटान्तलिताक्कूटात् योगध्यानं समाश्रिताः ।
केवलावगमात्शुद्धा मुनयस्तत्पदं गताः ॥६०॥

भावार्थ:- ब्रह्मलोकसे लौकांतिक देव आये, उन्होंने प्रभुकी वंदनाकर स्तुति की, प्रभुने अपने राज्यको वरचंद्र नामक पुत्रको दे दिया, देवोंसहित सुरसुंदरी नामक पालकीपर आरूढ होकर उन्होंने वनको प्रति प्रस्थान किया। पौष कृष्ण एकादशी के रोज अनुराधा नक्षत्रमें हजार राजाओंके साथ जिनदीक्षा ले ली। एवं अंतर्मुहूर्तमें चौथे मन:पर्यय ज्ञानको प्राप्त कर लिया।

दूसरे दिन आहार के लिए पर्यटन करते हुए नलिन पुरमें पहुँचे, वहां सोमदत्त नामक राजाने भक्तीसे उनकी पूजाकर आहार दान दिया, उसी समय पंचाश्चर्य वृष्टि हुई।

तदनंतर प्रभुने पुन: मौन धारण किया, और तपोवनमें पहुंचकर पंच महाव्रत, पंचसमिति, तीन गुप्ति, इस प्रकार तेरह प्रकारके चारित्रोंको निर्मलताके साथ आचरण कर फाल्गुण कृष्ण सप्तमीके रोज घातिया कर्मोंको नाशकर केवलज्ञानको प्राप्त किया ॥ ४६-५३ ॥

तदनंतर देवेंद्रकी आज्ञासे कुबेरने समवसरणकी रचना की, उसमें चंद्रप्रभ भगवान् सूर्यके समान शोभा को प्राप्त हो रहे थे। दत्तसेनादि गणधरोंसे युक्त होकर अनेक मुनिगणोंसे वंदित चंद्रप्रभ भगवान्ने दिव्यध्वनिको खिराया एवं दिव्यध्वनिसे भव्योंका कल्याण करते हुए अनेक पुण्य क्षेत्रोंमें विहार किया।

अपनी आयु अब एक महिनेकी बाकी है यह जानकर उन्होंने दिव्यध्वनिका निरोध किया, एवं अनेक मुनियोंके साथ सम्मेदाचल पर ललितघटा कूटपर प्रभु आये. उस ललित घटा कूटपर हजार मुनियोंके साथ समाधियोगको धारण कर भाद्रपद शुक्ल सप्तमी के दिन निर्वाण पदको प्राप्त किया।

तदनंतर उस कूटसे चौरासी कोटि अर्बुद, ७२ कोटि, अस्सीलाख, चौरासी हजार, पांचसौ पचपन मुनियोंने सिद्धधामको प्राप्त किया। ललित घटाकूटसे इतने मुनियोंने ध्यान कर, केवलज्ञान पूर्वक सिद्धपद प्राप्त किया ॥ ५४-६० ॥

भावार्थः— तदनंतर ललितदत्त नामक राजाने उस गिरिराजकी यात्रा की, उसकी कथाको अब कहता हूं, सज्जन गण सावधानपूर्वक श्रवण करें ॥६१॥

इस लोकमें पुष्करवर द्वीपमें पूर्वविदेहकी सीतानदीके पश्चिमतटमें पुष्कलावती नामक देश है, वहां पुंडरीक नामक नगर है, वहां महान् पराक्रमी महासेन नामक राजा हुआ। उसकी पत्नी अनेक शील सद्गुणोंके भंडार महासेना नामकी थी, अतः पतिको अत्यंत प्यारी थी ॥६२॥६३॥६४॥

एक दिनकी बात है। वह महासेन राजा वनको गया, वहां निर्मलचारित्रको धारण करनेवाले मुनिराजको देखा, उनके दर्शनसे राजा विरक्त हुआ। एवं वह धर्मात्मा दीक्षा लेकर निर्मल तपका आचरण करने लगा। आयुके अंतमें उस तपश्चर्याके फलसे पांचवे स्वर्गमें जाकर देव हुआ। अनेक देवांगनाओंके साथ सुखका अनुभव करते हुए वह आयुके अंतमें वह देव अयोध्या देशके सुखके राजा अजित और रानी महादेवीके गर्भमें शुभलक्षणोंसे युक्त ललितदत्त नामक पुत्र होकर उत्पन्न हुआ। यौवनावस्थामें उस ललितदत्तको दन-सेना नामकी पुत्री हुई जो उसे प्रिय व अनेक शुभ लक्षणोंसे युक्त थी। अजितसेन राजाने ललितदत्तको राज्य दिया वह स्वयं विरक्त होकर चला गया ॥६५॥६६॥६७॥६८॥६९॥७०॥

एक दिनकी बात है, वह ललितदत्त भी चारणमुनियोंके दर्शनके लिए गया एवं इस प्रकार कहने लगा कि स्वामिन्! चारण ऋद्धि की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है। कृपाकर कहियेगा। तब मुनिने कहा कि राजन् सुनो, बाकी के विषयोंको छोडकर यदि उसे प्राप्त करना चाहते हो तो सम्मेदशिखरकी यात्रा को भावपूर्वक करो। उसके प्रभावसे राजन्! निश्चयसे चारण ऋद्धिको प्राप्त करोगे, इस प्रकार मुनिवाक्यको सुनकर राजा प्रसन्न हुआ ॥७१–७५॥

भावार्थः– तदनंतर एक करोड ४२ लाख भव्योंसे युक्त संघका
धिपति बनकर राजाने श्री तीर्थराजकी यात्रा की, एवं बडी भक्तिसे
नत ललितघटाकूटकी वंदना की ॥७६॥

ललितदत्त राजाने करोड भव्योंके साथ वहीं विरक्त होकर
दीक्षा ली एवं तपके प्रभावसे चारणऋद्धिको प्राप्त किया। तदनंतर
उग्र तपको कर केवलज्ञानको प्राप्त किया, एवं पूर्वोक्त भव्योंके साथ
सिद्धत्वको भी प्राप्त किया ॥७७–७८॥

उस ललितघटाकूटकी वंदनासे भव्यजीव नरक व तिर्यंच गतिके
बंधसे छूटकर सोलह करोड प्रोषधोपवासका फल प्राप्त करता है।
जब एक कूटकी वंदनासे यह फल पाता है तो सर्व कूटोंकी भावपूर्ण
वंदनासे क्या फल पावेगा जिनेंद्र भगवान् ही जाने ॥७९॥८०॥

श्री चंद्रप्रभ भगवान्ने जिस कूटसे सिद्धि को प्राप्त किया,
जिसकी सदा भव्यगण आदर करते हैं, उस ललितघटाकूटको मैं
नमस्कार करता हूं।

जो भव्य उस ललितघटाकूटकी वंदना श्रद्धा और भक्ति
पूर्वक करता है वह इस लोकमे समस्त इच्छित वस्तुवोंको पाकर
क्रमशः मुक्तिको भी प्राप्त करता है ॥८१॥८२॥

इस प्रकार भ. लोहाचार्य की परंपरामें देवदत्तसूरिविरचित
सम्मेदशिखरमाहात्म्यमे ललितघटाकूटके वर्णनमे
श्रीविद्यावाचस्पति पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री द्वारा लिखित
भावार्थदीपिकानामकटीकामें

**आठवां अध्याय समाप्त हुआ**

---

## आठवें अध्यायका सारांश

इस अध्यायमें ललितघटाकूटसे भ. चंद्रप्रभ तीर्थंकर व अन्य
करोडों मुनिराज मुक्तिको प्राप्त हो गये उसका वर्णन है। वह ललित
घटाकूट पवित्र है। भगवान् चंद्रप्रभ तीर्थंकरके पूर्वभवोंका वर्णन है।

—oo—

# अथ नवमोऽध्यायः

अथ मोक्षाभियोगेतं सुरासुरनिषेवितं ।
पुष्पदंतप्रभुं भक्त्या वंदे मकरलांछनं ॥१॥

पुष्करार्धे द्वीपवरे प्रतीच्ये पूर्वमंदरे ।
सीता पश्चिमभागेऽस्ति विषयः पुष्कलावती ॥२॥

पुंडरीकपुरे तत्र महापद्माभिधो नृपः ।
अखंडराज्यमकरोत् अरक्षत्पुत्रवत्प्रजाः ॥३॥

महादानानि सर्वाणि याचकेभ्यस्समर्पयन् ।
अशेषराज्यसौख्यानि बुभुजे नीतितो नृपः ॥४॥

एकदा धर्मशेषाख्यं मनोहरवने मुनिं ।
श्रुत्वा गतो दर्शनार्थं तस्य भूपोचलन् मुदा ॥५॥

त्रिःपरिक्रम्य स तत्र गत्वा नत्वा मुहुर्मुहु ।
पादौ गृहीत्वा पप्रच्छ यतिधर्मान सनातनान् ॥६॥

मुनिस्त्रयोदशविधं चारित्रं स्वागमोदितं ।
श्रावयामास भूपाय प्रबुद्धस्तन्निशम्य सः ॥७॥

आत्मानमेकं सर्वेषु ज्ञात्वा भूतेषु भूपतिः ।
पुद्गलाभ्दिन्नममलं विरक्तोऽभूत्स चैहिकात् ॥८॥

राज्यं धनदपुत्राय दत्वा बहुनृपैस्सह ।
दीक्षां समग्रहीद्गत्वा वनं किल तपोरुचिः ॥९॥

एकादशांगधृग्भूत्वा तद्वत् षोडशभावनाः ।
भावयित्वा बबंधासौ गोत्रं तीर्थंकर परं ॥१०॥

सन्यासविधिना सोंते तनुं त्यक्त्वा तपोज्वलः ।
स्वर्गे हि पंचदशमे मुनिः प्रापाहमिंद्रताम् ॥११॥

सिंधुविंशतिकायुश्च सार्धत्रिकरदेहभृत् ।
शुक्ललेश्यायुतः श्रीमान् तेजसार्क इवोज्वलः ॥१२॥

सहस्रविंशतिमितो वर्षोपरि स मानसं ।
अदादाहारममलं स्वानंदोद्भवतोषभृत् ॥१३॥

पक्षेषु विंशतिमितेष्वयं परिगतेषु सः ।
निश्वसत्परमानंदात् सिद्धध्यानपरायणः ॥१४॥

षष्ठनारकपर्यंतं तत्स्थानादवधिं दधत् ।
सर्वकार्यसमर्थोऽसावुत्कृष्टसुखमन्वभूत् ॥१५॥

उत्कृष्टगुणसंयुक्तो व्यतीतायुस्सुखेन सः ।
षण्मासकावशिष्टायुरभवत्तत्पदे स्थितः ॥१६॥

तदा जंबूमति द्वीपे क्षेत्रे भारतिके शुभे ।
पट्टदेशे सदा भाति काकंदी नगरे शुभे ॥१७॥

इक्ष्वाकुवंश तत्पुर्यां काश्यपे गोत्र उत्तमे ।
सुग्रीवो नाम राजाभूत् धर्मात्मा भाग्यवारिधिः ॥१८॥

जयरामा तस्य देवी रूपसौभाग्यशालिनी ।
पत्युर्मनोहरा नित्यं स्वैरत्यद्भुतसद्गुणैः ॥१९॥

तद्गृहे यक्षपतिना वृष्टिष्षाण्मासिकी तदा ।
कृता रत्नमयी नित्यं सौधर्मेन्द्रमुखाज्ञया ॥२०॥

तत्काले चानतात्स्वर्गात् देवागमनवासरे ।
रात्रौ सुवर्णपर्यंके सा देवी संविवेशह ॥२१॥

फाल्गुने कृष्णपक्षे स नवम्यां मूलभे शुभे ।
स्वप्नानुषसि सा देवी षोडशैक्षत भाग्यतः ॥२२॥

तदते तन्मुखे मत्तसिंधुरो विशदुज्वलः ।
एवं स्वप्नान्निरीक्ष्यैषा नेत्राब्जंदघाटयत् ॥२३॥

उत्थिता विस्मिता देवी प्रमार्ज्य मुखवारिजं ।
पत्युस्समीपे सा स्वप्नान् अवादीदन्यदुर्लभान् ॥२४॥

यथोक्तफलमेतेषां श्रुत्वा पतिमुखात्सती ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मेनेसा धर्मवत्सला ॥२५॥

वर्णनीयं कथं भाग्यं तस्या देवेंद्रसेवितः ।
अहमिंद्रो गर्भगोभूद्यस्यास्तीर्थंकृदीश्वरः ॥२६॥

मार्गे शुक्लप्रतिपदि मूलभे जगदीश्वरं ।
सा सुतं सुषुवे देवी त्रिबोधपरिभास्वरं ॥२७॥

तदा सौधर्मकल्पेशः तत्रागत्य सुरैस्समं ।
देवं स्वयुक्त्योपादाय स्वर्णाद्रिमगमन्मुदा ॥२८॥

शिलायां पांडुकाख्यायां तत्र संस्थाप्य तं प्रभुं ।

अर्थः- उत्कृष्ट गुणोंसे युक्त वह देव सुखमे अपनी आयुको व्यतीत कर रहा था, जब छह महिने की आयु शेष रही ऐसी अवस्था उसे प्राप्त हुई ॥१६॥

उस समय जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमे पट्ट देशांतर्गत काकंदी नगर था, जहां इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न काश्यप गोत्रज सुग्रीव नामका धर्मात्मा भाग्यशाली राजा राज्य पालन कर रहा था, जयरामा नामकी उसकी पत्नी थी, वह रूप और सौभाग्यसे युक्त होकर सदा अपने सद्गुणोंसे पतिके मनको अपहरण कर रही थी, उनके महलमें सौधर्मेंद्रकी आज्ञा से कुबेरने छह महिनेतक रत्नवृष्टि की।

जिस दिन आनत स्वर्गसे वह देव आकर उत्पन्न होनेवाला था, उस दिन रातको वह महारानी सुवर्णके पलंगपर सो रही थी, उस समय देवीने १६ स्वप्नोंको देखा। स्वप्नके अंतमें उसके मुखमे मत्त गजका प्रवेश हुआ, तदनंतर जागृत हुई देवीने आश्चर्यके साथ पतिके समीप पहुंचकर स्वप्न वृत्तांतको कहा। पतिके मुखसे स्वप्नोंके यथोक्त फलको सुनकर वह धर्मवत्सला रानी अपनेको कृतकृत्य समझने लगी. उन दंपतियोंके भाग्यको वर्णन कौन करें, जिनकी सेवा देवेंद्र करने लगा, अहमिंद्र देव आकर जिसके गर्भमें तीर्थंकर होकर उत्पन्न हुआ। ॥१७॥१८॥१९॥२०॥२१॥२२॥२३॥२४॥२५॥२६॥

मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदाके रोज मूला नक्षत्रमे उस देवीने तीन ज्ञानके धारी तीनलोकके प्रभु तीर्थंकरको जन्म दिया. उसी समय अवधिज्ञानसे जानकर सौधर्मेन्द्र देवोंके साथ आया. सुमेरु पर्वतपर ले जाकर पांडुकशिलापर क्षीरसमुद्रके जलसे जन्माभिषेक किया, पुनः काकंदी नगरमें लाकर बडे महोत्सवके साथ पुष्पदंत यह नामाभिधान देवेंद्रने उस बालकका किया। (देवेंद्रका भाग्य भी बहुत बडा है, वह तीर्थंकरों के पंचकल्याण अवसरपर उपस्थित होकर उनकी सेवा करता है एवं दूसरे जन्मसे मुक्ति जाने योग्य पात्रता प्राप्त करता है। पुष्प-दंत तीर्थंकरके जन्माभिषेक कल्याणमें भी देवेंद्रने भाग लिया। ) ॥२७॥२८॥२९॥३०॥

अर्थः— तदनंतर उपत बालकको माताके गोदने समर्पण कर ाने परिवारके साथ देवेंद्र स्वर्गको चला गया ॥३१॥

प्रभ भगवान्के अनंतर नव कोटि सागर वर्षोंके बाद पुष्पदंत र्थंकर हुए। कुंदपुष्प की कलिकाके समान श्वेतवर्णको धारणकर, लाख पूर्व आयुवाले, सौ धनुष्यप्रमाण शरीरवाले, अमितवलको रण करनेवाले पुष्पदंतने बालक्रीडाके साथ पचास हजार पूर्व सुका अनुभव किया, तदनंतर यौवनावस्थाको प्राप्त किया, यौवना- याको प्राप्त होनेपर पिताने उन्हे राज्य प्रदान किया, राज्यको कर प्रभुने बडे न्यायनीतिके साथ प्रजावोंका परिपालन किया. अपने वसे देवेंद्रादिको भी आकर्षित किया ॥३२॥३३॥३४॥३५॥३६॥

एक दिनकी वात है, प्रभु महलके छतपर प्रकृति की शोभा खनेके लिए बैठे थे, तब उल्कापातको देखकर तत्काल संसारकी वरताका विचारकार वैराग्य को धारण किया। उसी समय लौकांतिक ोंने आनंदके साथ आकर प्रभुकी स्तुति की, तदनंतर देवनिर्मित विका पर आरूढ होकर प्रभु तपोवनके प्रति गये जिस समय सभी जयकार कर रहे थे। मार्गशीर्ष सुदी प्रतिपदाके रोज मूला नक्ष- । प्रभुने हजारों राजावोंके साथ जिनदीक्षा ली। अंतर्मुहूर्तके अंदर ही ई मनःपर्ययज्ञान की प्राप्ति हुई। दूसरे दिन प्रभुने आहारके लिए पुरको विहार किया। वहांपर पुष्यमित्रनामक राजाने नवधा रत के साथ प्रभुको आहार दिया। उसके फलसे पंचाश्चर्यकी ष्ट हुई ॥३७॥३८॥३९॥४०॥४१॥४२॥

पुनः वनमे जाकर चार वर्ष तक मौन धारण किया एवं अनेक ारके उग्र तपोंका आचरण किया। उनके प्रभावसे घातिया कर्मोका ाकर कार्तिक सुदी दोज के शामको बिल्ववृक्षके मूलमे केवलज्ञानको त किया। केवलज्ञान प्राप्त होनेपर देवेंद्रने समवसरण की रचना ाई, और उस समवसरणमें वह प्रभु कोटिसूर्यके समान तेजःपुंज कर प्रकाशित होने लगे ॥४३॥४४॥४५॥

अर्थः— यथाक्रम गणधरादियोंके द्वारा संपूजित प्रभुने दिव्य-ध्वनिसे उपदेश प्रदान किया, अनेक पुण्यक्षेत्रमें भव्योंके कल्याणके लिए उपदेश देते हुए विहार कर जब एक महिनेकी आयु बाकी रही तब सम्मेदशिखर पर्वतपर आ गये। वहांपर सुप्रभनामक कूटमें पहुं-चकर दिव्यध्वनिका उपसंहारकर योगधारण किया। एवं भाद्रपद सुदी १३ के रोज मुनियोंके साथ मोक्षधामको प्राप्त किया। वह सुप्रभ नामका कूट धन्य है। जहांसे पुष्पदंत तीर्थंकर की मुक्ति हुई। वह अनंत महिमासे युक्त है।

पुष्पदंत तीर्थंकरके अनंतर उसकूटसे ९९ करोड ९० लाख सात हजार ४८० मुनियोंने सिद्धधामको प्राप्त किया है ॥४६–५१॥

उस सुप्रभ कूटकी वंदना जो भव्य भावपूर्वक करता है वह करोड प्रोषधोपवासोंका फल प्राप्त करता है ॥५२॥

उसके बाद सोमप्रभ नामक राजाने उक्त कूटकी यात्रा की, उसकी पुण्यवर्धिनी कथा मैं अब कहता हूं ॥५३॥

जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमे आर्याखंडमे सुमौक्तिक नामक देश है। जहां उत्तम श्रीपुर नामक नगर है। वहांपर हेमप्रभ नामा उत्तम राजा हुआ, उसकी पत्नी विजया नामकी थी, वह कांतिसे बिजली के समान तेज थी, उनका पुत्र सोमप्रभ नामक था, जो महान् सुंदर था, पराक्रमी, गुणवान् धर्मात्मा था ॥५४–५६॥

एक दिनकी बात है, वरसेन नामक कोई मांडलिक राजा कोई कारणसे रुष्ट होकर अपनी सेनाके साथ श्रीपुरके पास आया, और हेमप्रभ राजाके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे बडी सेनाके साथ सज्ज होकर उस नगरको घेरा। इस बातको जानकर हेमप्रभ राजाने भी उसके साथ युद्ध करनेकी तैयारी की, और बडी वीरताके साथ युद्ध किया। परस्पर बहुत जोरोंसे युद्ध चल रहा, उस समय अपने पिताके पक्षको लेकर सोमप्रभकुमार भी युद्धभूमिमें उतरा ॥५७–६०॥

अर्थः— हाथमें गदा लेकर सोमप्रभ वही वीरोंके साथ शत्रुसे युद्ध करने लगा, उसकी बराबरी करनेवाला कोई वीर नहीं था. उस युद्धभूमिमें साक्षात् यमके समान घूमते हुए गदासे शत्रुका संहार किया. गदाके चमत्कारको देखकर एवं अपने पक्षकी हानि देखते हुए शत्रुराजा युद्धसे पराङ्मुख हुआ, सोमप्रभ राजाने भी अपने विजयसे सन्तुष्ट होकर सिंहनाद किया। अपनेको सर्वोत्तम समझने लगा. सामने सामने लाखों मृत मनुष्योंको देखकर कोटिभट सोमप्रभ राजाने अपनेको धिःकार कर वैराग्यको प्राप्त किया। हेमदत्त के पास पहुंचकर कहा कि राजन्! मैंने राज्यपद की प्राप्ति के लिए असंख्य जीवोंकी हिंसा की, और पापका संचय किया। मुझे धिःकार हो, यह कहते हुए वह जंगलको गया। वहांपर मुनिराज विमलवाहन का दर्शन किया। उनको तीन प्रदक्षिणा देकर भक्तिसे उनके चरणमें निवेदन किया कि स्वामिन्! मैंने बड़े भारी अपराध किया। तब मुनिराजने कहा कि राजकुमार! सुनो, राज्य तो तपके लिए हुआ करता है. जो व्यक्ति उस राज्यमें मग्न होकर उसीमें पड़ा रहता है वह नारकी बनकर दुःख उठाता है। और जो उसे छोड़कर तप करता है वह स्वर्ग और मोक्षका अधिकारी बनता है। इसी प्रकार तुम उस मोक्षके भागी बनोगे, कोई संदेह नहीं है। इसमें विचार करनेकी जरूरत क्या है।

सोमप्रभने भी पापसे अत्यंत भीत होकर शरीरादि पदार्थोंमें अनित्यत्वकी भावना की, एवं मुनिराजसे प्रार्थना की कि स्वामिन्! पूर्वजन्ममें मैंने ऐसा कौनसा सुकृत या दान दिया जिस के फलसे इस जन्ममें अनन्य दुर्लभ कोटिभटत्व को प्राप्त किया। उसके वचन को सुनकर मुनिराजने कहा कि राजकुमार! इसी नगरमें पूर्व में सुखदत्त नामका बहुत बड़ा श्रेष्ठी हुआ। वह विशाल धनसंचयके कारणसे मदोन्मत्त हुआ। उसने लोभके कारणसे किसीको एक कण भी अन्न-दान नहीं किया एवं दान देनेवालोंसे भी ईर्ष्या करने लगा। दानमें उद्योग करनेवालोंको वह देखे तो उनसे कलह करता था, उनसे ईर्ष्या द्वेष करता था, इस पापसे नगरमें उसकी बड़ी अपकीर्ति हो रही थी ॥६०-७५॥

तत्रागोऽन्यत्वं कोपि [illegible] ।
एवं तस्य [illegible] अतीतानि बहून्यपि ॥७६॥

एकदा [illegible] निमानानि तेषां [illegible] ।
तेषूदारत्नपूर्णानां कृता भूरि[illegible] ॥७७॥

निर्जगाम ततोऽसौ लोभाक्रान्तो गृहान्तरात् ।
तत्राजितात्मपदाधीन् मुनिं तं प्रति सोऽब्रवीत् ॥७८॥

मुने दुर्बलकायस्त्वं दृश्यते केन हेतुना ।
तदा तेन तथा वार्ता कथितानेन तं प्रति ॥७९॥

लब्ध्वाहारं यथा भुक्त्वा बभूवासौ यती तदा ।
अभुंजताल्पमन्नं च मुनिसंगप्रभावतः ॥८०॥

लोभं हित्वाऽकरोद्दानं पुण्यात्मा स बभूवह ।
एकदा शुभसेनाख्यो मुनीशस्तेन लक्षितः ॥८१॥

तदा सुप्रभकूटस्य वर्णनं मुनिना कृतं ।
यात्राभावी स तत्श्रुत्वा बभूव मुनिदर्शनात् ॥८२॥

तदैव कोटिभटता योग्यता तस्य चाभवत् ।
पुण्यवृद्धिर्बभूवास्य तद्यात्राभावनादपि ॥८३॥

विदर्भदेशमार्गेन—सम्मेदाचलमाप्तवान् ।
तत्रैव दैवयोगाच्च स श्रेष्ठिः तनुमत्यजत् ॥८४॥

ततः सोमप्रभाख्यां स धृत्वात्रैवाऽभवन्नृप ।
एवं प्रभासकूटं तत् ज्ञात्वा यात्रां कुरुष्व भो ॥८५॥

मुनिवाक्यमिति श्रुत्वा गृहमागत्य सत्वरं ।
सत्संघसहितो यात्रां सम्मेदस्य चकार सः ॥८६॥

तत्र गत्वा सुप्रभाख्यं कूटं भक्त्याभिवंदितः ।
राज्यं च लौकिकं प्राप्य भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥८७॥

शुभसेनाख्यपुत्राय राज्यं दत्वा ततो नृपः ।
द्वात्रिंशत्कोटिभव्यैश्च सार्धं चक्रे तपो महत् ॥८८॥

केवलज्ञानमासाद्य घातिकर्मक्षयान्मुनिः ।
स्वसंघसहितो मुक्ति जगाम भुवि दुर्लभां ॥८९॥

महालुब्धोपि मंदश्च सम्मेदं भावयन्मुदा ।
भस्मीकृत्याखिलं कर्म कैवल्यपदमाप सः ॥९०॥

अर्थ:– पापागमनकी शंकासे उसके नामका उच्चारण भी कोई नहीं करते थे, इस प्रकार उसके बहुत दिन व्यतीत हुए ।

एक दिनकी बात है, देवगण विमानारूढ होकर रत्नवृष्टि करते हुए आकाश मार्गसे जा रहे थे. इसे देखकर वह लोभी सुलदत्त घरसे बाहर आया। और उन रत्नोंका संचय उसने किया। और वहांपर उसने अजितनामक मुनिनायको देखा, और उनके प्रति कहा, स्वामिन्! आप बहुत कृशकाय हो गये हैं। इसका कारण क्या है। तत्काल यह समझमें आया कि यह बहुत दिनोंके उपवासी है। मुनिराजसे उस सुलदत्तने प्रार्थना की कि स्वामिन्! मेरे घरमे पदार्पण कर थोडा आहार लीजिये. यह प्रार्थना कर लोभका परित्यागकर आहारदान दिया एवं पुण्यकी प्राप्ति की.

एकबार शुभसेन मुनीश्वरने प्रभासकूटकी महिमाका वर्णन किया। इसे सुनकर उसी समय उस कूटकी यात्रा करने की भावना जागृत हुई। उसके प्रभावसे कोटिभटत्वकी शक्ति प्राप्त हुई। उसके बाद उसने विदर्भ देश के मार्गसे सम्मेदशिखरकी यात्रा की, और दैव योगसे उस श्रेष्ठीने वहींपर अपने शरीरका त्याग किया अर्थात् मरणको प्राप्त किया। तदनंतर वही जीव यहांपर सोमप्रभ राजकुमार होकर तुम उत्पन्न हुए, इसलिए तुम भी उस प्रभासकूटकी यात्रा भक्तिसे करो ॥७५–८५॥

इस प्रकार मुनिराज के वचन को सुनकर सोमप्रभ राजकुमार जल्दी घर आया, और संघसहित होकर सम्मेदाचलकी यात्रा की, वहांपर सुप्रभ नामके कूटकी वंदना भक्तिसे की। तदनंतर राज्य वैभवको, अनेक दिनतक भोगकर कीर्तिको प्राप्त किया। तदनंतर शुभसेन नामक अपने पुत्रको राज्य देकर बत्तीस करोड राजावोंके साथ दीक्षा लेकर तपश्चर्या की, तदनंतर तपःप्रभावसे केवलज्ञानको प्राप्त कर अपने संघके साथ दुर्लभ मुक्तिधामको भी प्राप्त किया। महान् अज्ञानी व लोभी होनेपर भी सम्मेदाचलकी वंदनासे कषाय मंद होनेपर समस्त कर्मोंको जलाकर निर्वाण पदको उसने प्राप्त किया ॥८६–९०॥

ईदृक्प्रभावसम्मेद-कूटोयं सुप्रभाभिधः ।
श्रावणीयो माननीयः सदा वंद्यो मनीषिभिः ॥९१॥

वंदनादेककूटस्य फलमीदृक्प्रकाशितं ।
वंदनात्सर्वकूटानां वक्तव्यं किं पुनर्बुधाः ॥९२॥

अखिलकलुषराशिध्वंसनातिप्रवीणं ।
सुकृतजलधिचंद्रं पुष्पदंताधिवासं ।
तिमिरगजमहौघव्रातसंहारसिंहं ।
मनसि निविडभक्त्या सुप्रभं कूटमीडे ॥९३॥

इति भगवल्लोहाचार्यानुक्रमेण देववत्तसूरिविरचिते
सम्मेदशिखरमाहात्म्ये सुप्रभकूटवर्णनो नाम
नवमोऽध्यायः समाप्तः

अर्थः— इस प्रकार सम्मेदाचलके सुप्रभा नामके कूटकी महिमा अपार है। बुद्धिमानोंको उचित है कि वे सदा उसकी वंदना करें, आदर करें, और उसकी वार्ताको श्रवण करें।

भक्ति पूर्वक उस एक सुप्रभा कूटकी वन्दना करनेसे इस प्रकार का अचिन्त्य फल प्राप्त होता है तो सर्व कूटोंकी वंदनाके फलको कौन कह सकता है ॥९१–९२॥

समस्त पाप रूपी शत्रुओंके ध्वंस करनेमें समर्थ पुण्यसमुद्रके लिए चंद्रके समान आनंद देनेवाले, एवं अज्ञान अंधकार रूपी हाथीके समूहको नष्ट करनेके लिए सिंह के समान ऐसे श्री पुष्पदंत स्वामीको एवं उनके मुक्तिके स्थान रूपी सुप्रभा कूटको मैं बहुत भक्तिके साथ नमस्कार करता हूं ॥९३॥

इस प्रकार लोहाचार्यकी परंपरामें देवदत्तसूरिविरचित
सम्मेदशिखरमाहात्म्यमें सुप्रभाकूट वर्णनमें
श्रीविद्यावाचस्पति पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री लिखित
भावार्थदीपिका नामक टीकामें

**नवमां अध्याय समाप्त हुआ.**

---

## नवमें अध्यायका सारांश

पुष्पदंततीर्थंकरके भवोंका वर्णन, सुप्रभा कूटसे उनके मुक्तिगमन का वर्णन इसमें किया गया है। इसी प्रकार उस सुप्रभाकूटकी महिमाबताई गई है। और पुष्पदंतके बाद सोमप्रभ राजाने अनेक श्रावकोंके साथ गिरिराज व उस कूटकी यात्रा की एवं मुक्तिधामको प्राप्त किया। उक्त सोमप्रभके भी भवांतरका वर्णन है। सुप्रभा कूटकी वन्दनासे एक करोड प्रोषधोपवासका फल मिलता है तो सर्व कूटोंकी वन्दना करनेसे क्या फल नहीं मिलेगा? इस प्रकार इस कूटका महत्व इस अध्यायमें विवेचन किया गया है।

---

[illegible]

[illegible] ... [illegible] ... शोभते

चिर [illegible] ॥६॥

स्वयं [illegible] ।

धृत्वा [illegible] ॥७॥

दध्रे तीर्थंकर गोत्रं [illegible] ततः ।

तनुं त्यक्त्वारणे पञ्चदशमे कल्प उत्तमे ॥८॥

संप्राप सोऽहमिन्द्रत्व द्वाविंशत्यर्णवायुषा ।

तत्प्रमाणसहस्राब्द-गमने मानसं प्रभुः ॥९॥

आहारमग्रहीत्तद्द्वाविंशत्पक्षोपरि ध्रुवं ।

अद्वयसत्परमानंद निर्भरः पूरिताशयः ॥१०॥

त्रिज्ञानलोचनस्तस्मात् नरकावधिसत्पदान् ।

सर्वं कर्तुं समर्थोभूत् सिद्धबिंबं समर्चयन् ॥११॥

तदा जंबूमति द्वीपे भारते क्षेत्र उत्तमे ।

आर्यखंडे शुभे देशे नगरे भद्र नामनि ॥१२॥

इक्ष्वाकुवंशे राजाभूत् नाम्ना दृढरथो महान् ।

सुनंदाख्या महाराज्ञी सुभगा देवतोपमा ॥१३॥

प्रभोरागमनं तस्या गृहे ज्ञात्वा स वासवः ।

राजराजं महोत्साहात् रत्नवृष्ट्यर्थमादिशत् ॥१४॥

षण्मासमेकरीत्या स प्रेम्णा जीमूतवत्तदा ।

वसुवृष्टिं मुदा चक्रे मुसलाकारधारिकां ॥१५॥

# दसवां अध्याय

अर्थः— विद्युद्वर नामक मंगल कूटको पहुंचकर जो मुक्तिको प्राप्त भये हैं ऐसे शीतलनाथको हम नमस्कार करते हैं।

पुष्करद्वीपके पूर्व विदेह में सीतानदीके दक्षिणमे वत्स नामका देश है, जहां सुसीमा नामकी नगरी है। वहांपर पद्मगुल्म नामक पुण्यात्मा राजा राज्यपालन कर रहा था। वह महाप्रतापी था. न्यायनीतिसे युक्त था, श्रीकर्णा नामकी उसकी रानी अत्यंत सुंदरी, सुशीला, गुणवती थी, उन्हे चंदननामका पुत्र था। जो अत्यंत सुशील, गुण समूहसे युक्त गुणवान्, श्रीमान् था, उससे दंपति शोभित हो रहे थे।

एक दिनकी बात है, वह आकाशकी शोभाको देखते हुए मेघोंके विभ्रम को देखकर विरक्त हुआ। चंदन नामके अपने समर्थ पुत्रको राज्य दे दिया। उसी समय जंगलमे जाकर तपस्वियोंमे मुनि दीक्षा ली। एकादश अंगोंका पाठ किया एवं षोडशकारण भावनावोंकी भावना की, उसी समय तीर्थंकर गोत्रका बंध किया, अंतमें सन्यास विधिसे मरण पाकर पन्द्रहमें आरण स्वर्गमें जन्म लिया। वहांपर इन्द्रत्वको पाकर २२ सागरकी आयु की प्राप्ति की, २२ हजार वर्षोंके बाद एक बार वह मानस आहारको ग्रहण करता था, इसी प्रकार २२ पक्षोंके बाद एकबार श्वासोच्छ्वास लेता था। सदा परम आनन्दमे रहता था, अवधिज्ञान उसको छठे नरक तक का था, सर्व शक्तिसे युक्त होनेपर भी केवल सिद्धोंका स्मरण करते हुए अपना समय व्यतीत कर रहा था ॥१–१०॥

इधर जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमे आर्यखण्डमें भद्रनामक नगरमें इक्ष्वाकुवंशमें दृढरथ नामका राजा हुआ। उसकी पत्नी सुनन्दा अत्यंत सुंदरी देवांगनाके समान थी। स्वर्गके उक्त देवका जीव तीर्थंकर होकर इस रानीका गर्भ में आनेवाला है, यह देवेंद्रने अवधिज्ञानसे जानकर कुबेरको छह महिने तक रत्नवृष्टि करनेकी आज्ञा दी। कुबेरने एकरीतिसे मूसलधारसे रत्नवृष्टि की ॥११–१५॥

[illegible] ।
[illegible] ॥३५॥
देवोपनीतां शिविकां मुक्ताविकृतमंगलः ।
स्वयं जगाम तपसे वनं मुनिजनालयम् ॥३६॥
द्वादश्यां माघमासे स कृष्णायां जन्मभे शुभे ।
दीक्षां जग्राह शुद्धात्मा जैनीं जैनजनार्चितः । ॥३७॥
सहेतुकवने धृत्वा दीक्षां वेलोपवासकृत् ।
सहस्रक्षितिपैस्सार्धं रराजार्कसमप्रभः ॥३८॥
अंतर्मुहूर्ते स ज्ञानं चतुर्थं प्राप्य मानसे ।
परेन्द्यरिष्टनगरं भिक्षार्थं प्राप्तवान् प्रभुः ॥३९॥
पुनर्वसुमहीपालः सत्कारं प्राप्य भूरिशः ।
कृत्वाहारं ददौ प्राप तद्देवाश्चर्यपंचकं ॥४०॥
छद्मस्थोऽभूत् त्रिवर्षं स तप उग्रं समाचरन् ।
पौषकृष्णचतुर्दश्यां जन्मभे भगवान् वने ॥४१॥
अधस्ताद् बिल्ववृक्षस्य कृत्वा घातिक्षयं विभुः ।
सम्प्राप्य केवलज्ञानं सर्वतत्त्वप्रकाशकं ॥४२॥
अनगारगणेंद्राद्यैः यथासंख्यैस्समास्ततः ।
स्थितैर्द्वादशकोष्ठेषु बभ्राजि दिनराडिव ॥४३॥
तदासौ भव्यसंपृष्टस्सर्वतत्त्वावबोधकं ।
समुच्चरन् दिव्यघोषं पीयूषह्रेयकं मुदा ॥४४॥
...यक्षत्रेष्वशयेषु सविलासं महाप्रभुः ।
...वन् देवजयध्वान विजहार [illegible] । ॥४५॥

एकमासावशिष्टायु: सम्मेदाख्यधराधरे ।
विद्युद्वराभिधे कूटेऽतिष्ठत्संहृत्य तं ध्वनिं ॥४६॥

श्रावणे मासि शुक्लेयं पूर्णिमायां जगत्पतिः ।
सहस्रमुनिभिस्सार्धं कैवल्यपदमाप्तवान् ॥४७॥

अष्टादशोषतकोटिनां कोट्युक्तस्तद्वत: परं ।
द्विचत्वारिंशदुक्ताश्च कोट्यो द्वात्रिंशदीरित: ॥४८॥

लक्षास्तद्वद्विचत्वारिंशत्सहस्राण्यत: परं ।
शतानि नव पंचेति संख्योक्तास्तापसा गिरा ॥४९॥

तस्मात्कूटाच्छिवं जाता: तद्दन्वविचलो नृप: ।
चालयामास सत्सघं शीतलानंतर महत् ॥५०॥

भद्राभिधे पुरे धीमान् देशे मलयसज्ञके ।
अभून्मेघरथो राजा धर्मकर्मपरायण: ॥५१॥

एकस्मिन् समये सिंहासनस्थो बलवारिधि: ।
पप्रच्छ मंत्रिण: श्रेयान् किं दानं हि महाफलं ॥५२।

भूपालभारतीं श्रुत्वा सुमतिर्मंत्रिसत्तम: ।
प्राह भूप महाराज श्रुणु दानचतुष्टयं ॥५३॥

आहारदानं प्रथमं शास्त्रदानं द्वितीयकं ।
तृतीयमौषधं दान चतुर्थमभयाभिधं ॥५४॥

चतुर्दानानि दानानां प्रधानानि बुधा: जगु: ।
[illegible] ॥५५॥

जब एक महिनेकी आयु बाकी रही तब सम्मेदाचलपर विद्युद्वर कूटपर गये; एवं दिव्यध्वनिका उपसंहारकर ध्यानमें मग्न हुए. श्रावण शुद्ध पूर्णिमाके रोज कैवल्यपदको प्राप्त किया। उसके बाद उसकूटमे १८ कोडाकोडि, व्यालीस कोटि बत्तीस लाख व्यालीस हजार नौ सौ पांच संख्यासे तपस्वी मुक्तिको गये ॥४६–४९॥

शीतलनाथके अनंतर अविचलनामक राजाने संघको चलाकर यात्रा की, उसी विषयको अब कहते हैं ॥५०॥

मलय देशमें भद्र नामका नगर है। वहां बुद्धिमान् धर्मपरायण मेघरथ नामक राजा हुआ। एक समय वह सिंहासनापर आसीन था, उसने मन्त्रियोंसे प्रश्न किया कि मन्त्री! दानोंमें कौनसा दान श्रेष्ठ है ? राजाके वचनको सुनकर मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ सुमतिने कहा कि राजन् ! चार दानोंके विषयमे कहता हूं. सुनो, पहिला आहार दान हैं, दूसरा शास्त्र दान है, तीसरा औषधदान है, चौथा अभय दान है ॥५१–५४॥

इस प्रकार चार दानोंको बुद्धिमान् लोग मुख्य मानते है। इनके करनेसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है ॥५५॥

इसे सुनकर राजा मेघरथने पुनः कहा कि द्विजवर ! और भी कोई दान हो तो बताओ, जिससे मेरी संपत्तीका सदुपयोग हो. तब सोमशर्मा ब्राह्मणमन्त्री था, उसने कहा कि राजन्! पूर्वोक्त चार दान तो, दरिद्रोंके द्वारा दिये जाते हैं। आप सरीखे राजावोंके द्वारा देने योग्य दान तो अन्य है। उनको में कहता हूं। आप सुनिये। ॥५६–५८॥

कन्या, हाथी, घोडा, रथ, महल, धन, तिल, गेंहू आदि का दान देना चाहिए. इसे सुनकर वह राजा दान देने के लिए उद्यत हुआ, परन्तु इन दानोंको किन्हे देवे, यह विचार करने लगा। ॥५९–६०॥

सोमशर्मस्ततो मूढाशालस्तान्यतिलोमतः ।
शास्त्रवत्प्रतिजग्राह दानान्युक्तानि दुष्टधीः ॥६१॥

तन्मेघरथवंशेभृत् भूपोऽविचलनामकः ।
मुनिचारणसंगाच्च निर्मले तस्य मानसे ॥६२॥

संमेदभूमिमृद्भवितः जाता ह्यचिरकालतः ।
अद्भुता महिमा तस्य श्रुतः श्रुत्वा जहर्ष सः ॥६३॥

तदा संघसमेतोऽसौ शैलसंदर्शनोत्सुकः ।
द्वात्रिंशल्लक्षमनुजैः समं यात्रां चकार सः ॥६४॥

प्राप्य विद्युद्वरं कूटमभिवंद्य समर्च्य च ।
षोडश प्रोक्तलक्षोक्त भव्यजीवैः समं नृपः ॥६५॥

दीक्षामविचलो धृत्वा श्रीमेघरथवंशजः ।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतः पदं सम्प्राप्य शाश्वतं ॥६६॥

यस्माच्छीतलनाथ उत्तमतपस्तेजः कृशानुज्वल-।
ज्वाला संपरिदग्धकर्मविपिनः सिद्धालये शोभवत् ।
ध्यानाद्वंदनतो हि यस्य मनुजः कैवल्यपात्रं भवेत् ।
तं विद्युद्वरकूटमुत्तमतरं भक्त्या प्रवंदामहे ॥६७॥

इति भगवल्लोहाचार्यानुक्रमेण देवदत्तसूरिविरचिते
सम्मेदशिखरमाहात्म्ये विद्युद्वरकूटवर्णनो नाम
दशमोऽध्यायः समाप्तः

तीर्थंकरने अतिथियोंके कारण उनके लिए योग्य पात्र स्वयं को ही बताया, एवं उन दानोंका स्वयं ग्रहण किया ।

उस मेघरथके वंशमें अविचल नामक राजा हुआ, उसके मनमें चारण मुनियोंके संसर्गसे सम्मेदपर्वतकी वन्दना करनेका भाव जागृत हुआ । तब ३२ लाख भव्योंके संघके साथ उसने यात्रा की । विद्युद्वरकूटकी भक्तिसे वन्दना की, पूजा की, तदनन्तर १६ लाख भव्योंके साथ राजाने वहींपर दीक्षा ली ॥६१–६५॥

१६ लाख भव्योंके साथ दीक्षा लेकर मेघरथ के वंशज अविचलने शुद्ध सम्यक्त्वादिको पाकर शाश्वतपदको प्राप्त किया ॥६६॥

जिस विद्युद्वरकूटसे भगवान् शीतलनाथने उत्तमरूपी तेज अग्निकी ज्वालासे कर्मरूपी जंगलको जला दिया, एवं सिद्धालयमें जाकर विराजमान हुए, जिनके ध्यानसे, वंदनसे यह मनुष्य मुक्तिके लिए पात्र बनता है, उस उत्तम विद्युद्वरकूटको मैं भक्तिसे वंदना करता हूं ॥६७॥

इस प्रकार भ. लोहाचार्य की परंपरामें देवदत्तसूरिविरचित
सम्मेदशिखरमाहात्म्यमें विद्युद्वरकूटके वर्णनमें
श्रीविद्यावाचस्पति पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री द्वारा लिखित
भावार्थदीपिका नामक टीकामें

**दसवां अध्याय समाप्त हुआ**

---

## दसवें अध्यायका सारांश

शीतलनाथ तीर्थंकर जिस विद्युद्वरकूटसे मुक्तिको प्राप्त हुए, उस विद्युद्वर कूट एवं शीतलनाथके पंचकल्याण अवसर और भवान्तरोंका वर्णन है । साथमें शीतलनाथ तीर्थंकरके तीर्थमें कन्या, भू, हाथी, घोडा, रथ, महल आदिके दान भी प्रचलित हुआ । शीतलनाथके बाद अविचल नामक राजाने उक्त कूटकी वन्दना की एवं दीक्षा लेकर मोक्षको प्राप्त किया ।

--oo--oo--

# अथ एकादशोऽध्यायः

अथोत्तमतपोमूर्तिः केवलज्ञानसागरं ।
श्रेयस्करं वंदकानां श्रेयांसं तं नमो वयं ॥१॥

गतस्संकुलकूटाद्यो मुक्तिं संसारदुर्लभां ।
श्रेयांसस्तस्य कथां पुण्यां वक्ष्ये संक्षेपतोऽधुना ॥२॥

द्वीपेस्मिन पुष्कराधाख्ये शुचौ पूर्वविदेहके ।
मंदरे शीवलिन्याश्च सीतायाः उत्तरे तटे ॥३॥

कच्छदेशो महान् तत्र भाति क्षेमपुरं महत् ।
तस्य राजा महानासीत् नामतो नलिनप्रभः ॥४॥

न्यायकर्ता प्रतापाढ्यः सुखीधर्मरतस्सदा ।
राज्यं चकार स्वकृतै सुकृतैः पूर्वजन्मनि ॥५॥

सहस्रवन एकस्मिन् समये नंदनामकः ।
समागतो जिनस्वामी तपसा भास्करोपमः ॥६॥

श्रुत्वा तमागतं राजा परिवारसमन्वितः ।
मुदा तद्दर्शनाकांक्षी गत्वा तत्र ननाम तं ॥७॥

यतिधर्मास्ततः पृष्ठा श्रुत्वा वैराग्यमाप्तवान् ।
राज्यं समर्प्य पुत्राय स स्वयं दीक्षितोऽभवत् ॥८॥
बहुभूपैस्समं तत्र दीक्षां संधार्य पावनीं ।
एकादशांगविद्भूत्वा ततः षोडशभावनाः ॥९॥
समाद्य तीर्थकृद्गोत्रं संप्राप्यांते तपोनिधिः ।
सन्यासेन तनुं त्यक्त्वा स्वर्गं षोडशमं ययौ ॥१०॥
तत्र पुष्पोत्तराख्ये स विमाने स्वतपोबलात् ।
सम्प्राप्य चाहमिंद्रत्वं रेजे शारदचंद्रवत् ॥११॥
द्वाविंशतिसमुद्रायुः शुक्ललेश्यात्मतनुः ।
त्रिहस्तप्रमितांगोऽसौ बभूवाबाधसुन्दर्शनः ॥१२॥
[illegible] सस्वामी द्वाविंशतिसहस्रकैः ।
[illegible] मानसाहारमग्रहीत्पुण्यसंभवं ॥१३॥
[illegible] पक्षैः द्वाविंशतिमितैः सः ।
[illegible] श्रीमान् सर्वकार्यक्षमोऽभवत् ॥१४॥
[illegible] सिद्धान् समुपयन् मुदा ।
[illegible] ॥१५॥

# ग्यारहवां अध्याय.

अर्थः— अब उत्तम तपोमूर्ति केवलज्ञानके सागरस्वरूप भव्य जनोंके क्षेम करनेवाले श्रेयांसतीर्थंकरको नमस्कार करते हैं ॥१॥

जो श्रेयांस तीर्थंकर संकुलकष्टमें संसारमें दुर्लभ मुक्तिको प्राप्त भये, उनकी पुण्यकथाको अब संक्षेपसे कहेंगे ॥२॥

इस पुष्करार्ध द्वीपके पूर्व विदेहमें सीतानदीके उत्तर तटमें कच्छ नामका महान् देश है. यहां क्षेमपुर नामक नगर शोभाको प्राप्त हो रहा है, वहां राजा नलिनप्रभ राज्य कर रहा था । वह न्यायनिष्ठ, धीर, सुखी, धर्मरत था, अपने पूर्वोपार्जित पुण्यसे सुखसे राज्यपालन करता था ॥३–५॥

एक दिनकी बात है, सहस्रवन नामक उद्यानमें नंदनामक निर्ग्रंथ साधु आये जो तपसे सूर्यके समान तेजःपुंज थे । उनके आगमनके समाचार को सुनकर राजा अपने परिवारके साथ आनंदसे उनके दर्शनकी इच्छासे वनमें गया व उनको नमस्कार किया । यतिधर्मका उपदेश उन्होंने सुना, उसी समय वैराग्यको प्राप्त किया । अपने पुत्रको राज्य देकर स्वयं दीक्षित हुआ । अनेक राजावोंके साथ पवित्र जिनदीक्षाको लेकर एकादशांगका पाठ किया, एवं षोडशभावनावोंको भाकर तीर्थंकर गोत्रका बंध किया । आयुष्यके अंतमें समाधिमरणके साथ शरीर छोडकर सोलहमें स्वर्गमें जाकर जन्म लिया ।

उस तपश्चर्याके फलसे वहां पुष्पोत्तर विमानमें जन्म लेकर शरत्कालके चंद्रमाके समान अहमिंद्रत्वको प्राप्त किया । वहांपर बाईस सागरोपमकी आयु है, शुक्ललेश्या है । तीन हस्त प्रमाण शरीर है, बहुत सुंदर शरीरको प्राप्त किया है, बाईस हजार वर्षोंके बीतनेके बाद वह मानस आहार ग्रहण करता था, बाईस पक्षोंके बीतनेपर वह श्वासोच्छ्वास लेता था, सर्व कार्यमें निपुण था, सदा सिद्धोंका ध्यान, सिद्धोंकी वंदना व पूजामें अपना समय व्यतीत करता था ।

वहांपर जब उसकी आयु छह महिनेकी बाकी रही तब अनेक देवोंके द्वारा सेवित होकर अपना समय व्यतीत करता था ॥६–१५॥

यथा स आगतो भूपो भूत्यां भुवनदीपकः।
तद्वक्ष्ये श्रवणाद्यस्य सर्वपापक्षयो भवेत् ॥१६॥
जंबूद्वीपे शुभे क्षेत्रे भारते कौशलाभिधे।
देशे सिंहपुरी तत्र इक्ष्वाकोवंश उत्तमे ॥१७॥
विष्णु नामाऽभवद्राजा भाग्यसिंधुः प्रतापवान्।
सत्कीर्तिः स्वविभूत्या स देवेंद्रमपि लज्जयन् ॥१८॥
नंदाख्या तस्य महिषी शुभलक्षणलक्षिता।
प्राणेशप्राणसदृशा स्वकीयैः सद्गुणैः ध्रुवं ॥१९॥
यया सह स धर्मात्मा शीलसंपन्नया तदा।
रेजे राजगृहे शच्या त्रिदिवे देवराडिव ॥२०॥
ज्ञात्वा तयोः गृहे देवागमनं भाविनं तथा।
शक्राज्ञया धनाधीशो वसुवृष्टिं चकार सः ॥२१॥
तां दृष्ट्वा विस्मितास्सर्वे संततापातनिर्भरां।
अन्वमन्यंत भवने राज्ञो भावि शुभं महत् ॥२२॥
ज्येष्ठे कृष्णदले षष्ठ्यां श्रावणर्क्षे नृपप्रिया।
निशावसाने साऽपश्यत् स्वप्नान् षोडशमंदिरे ॥२३॥
स्वप्नांते सा करटिनं मत्तं स्वमुखपंकजे।
प्रविशंतं समालोक्य प्रबुद्धा विस्मिताभवत् ॥२४॥
तथैव मुखमाकेशं सम्मार्ज्य विमलैर्जलैः।
गता पतिसमीपं सास्वश्रौषीत् स्वाप्निकं फलं ॥२५॥
श्रुत्वाद्भुतं फलं तेषां गर्भे संधार्य दैवतं।
रराज मंदिरे देवी महासुकृतमूरिव ॥२६॥
दशमे फाल्गुने कृष्णैकादश्यां मासि चोत्तमे।
अहमिंद्रो भूपगृहेऽजातस्तेजसां निधिः ॥२७॥
त्रिज्ञानलोचनोऽभ्दासि शुभलक्षणदीपितः।
तपोनिधिः प्रसन्नात्मा भ्राजतेस्म रविर्यथा ॥२८॥
शक्रस्तदैवावधितो ज्ञात्वावतरणं प्रभोः।
जयेत्युच्चार्य सहसा सदेवस्तत्र चागमत् ॥२९॥
ततः प्रभुं समादाय सादरं भक्तिनम्रधीः।
विमाने स्वांकगं कृत्वा गतः स्वर्णाचलं मुदा ॥३०॥

वहांसे चयकर इस पृथ्वीमे राजा होकर अवतरित होगा, वह न लोकका दीपक होगा, उसकी कथाको कहेंगे, जिसके सुननेसे पक्षय होता है ।

इस जंबूद्वीपके शुभ भरत क्षेत्रमे कोशल नामक देश है, वहांपर मपुरी नामकी नगरी है ॥१६-१७॥

वहांपर उत्तम इक्ष्वाकु वंशमे उत्पन्न विष्णु नामक राजा हुआ, ो भाग्यशाली कीर्तिशाली व प्रतापी था, एवं अपनी विभूतिसे देवेंद्र ो भी लज्जित करता था, अनेक शुभलक्षणोंसे युक्त नंदा नामकी सकी रानी थी, अपने सद्गुणोंके द्वारा पतिको अत्यंत प्रिय होगई ी, उस शील संपन्न रानीके साथ वह धर्मात्मा राजा शचीके साथ विंद्रके समान शोभाको प्राप्त हुआ ।

इन दंपतियोंके गृहमें भगवान् का अवतार होनेवाला है, यह देवेंद्रने जानकर कुबेरके द्वारा रत्नवृष्टि कराई, इसे देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित हुए, राजाने अपने महलमे होनेवाली भावी शुभसूचनाका विचार कर आनंदका अनुभव किया ॥१७-२२॥

ज्येष्ठ वदी ६ श्रवणनक्षत्रमे उस देवीने रात्रीके अंतिम प्रहरमें सोलह स्वप्नोंको देखे, स्वप्नके अंतमें अपने मुखमे मत्तहाथीके प्रवेशको भी देखा, एवं आश्चर्यसे तत्काल जागृत हुई । उसी समय मुख मार्जन, केशसंमार्जन आदि क्रियावोंसे निवृत्त होकर पतिदेवके पास गई व अपने स्वप्नोंको निवेदन किया । पतिके मुखसे स्वप्नोंके अद्भुत फलको सुना व अपने गर्भमें तीर्थंकरका अवतार हुआ, यह जानकर बडी प्रसन्न हुई ।

गर्भमें तीर्थंकर को धारण कर वह देवी महा पुण्यशालिनी होकर शोभित होने लगी । फाल्गुन वदी एकादशीके रोज उत्तम मासमे अहमिंद्र देवका वह जीव राजाके गृहमें जन्म लिया अर्थात् जिन बालकका जन्म हुआ ।

वह बालक जन्मतः मतिश्रुत अवधिनामक तीन ज्ञानके धारी था, अनेक शुभलक्षणोंसे युक्त था, प्रसन्नतासे सूर्यके समान तेजःपुंज था, उसी समय देवेंद्रने अपने अवधिज्ञानसे जानकर जयघोष के साथ वहांपर आया, एवं प्रभुको अपनी गोदमें लेकर सुमेरु पर्वतपर गया ॥२३-३०॥

शिलायां पांडुकाख्यायां ततस्संस्थाप्य तं प्रभुं ।
चक्रे घटाभिषेकं स क्षीरोदधिजलैश्शुभैः ॥३१॥

पुनर्गंधोदकं स्नानं समाप्य विधिवन्मुदा ।
दिव्यैराभरणैर्देवं समाभूषयदच्युतः ॥३२॥

ततो जयध्वनिं कृत्वा पुनरायात् नृपालयं ।
तत्र संपूज्य देवेशं चक्रे तांडवमुत्तमम् ॥३३॥

श्रेयस्करत्वात् श्रेयांनित्यभिधां श्रीजगद्गुरोः ।
कृत्वा मात्रे समर्प्यैनं गतःस्वर्गं स वासवः ॥३४॥

षट्षष्टिकोटिसंप्रोक्त सागरेषु गतेषु वै ।
शीतलेशादमूच्छ्रेयान् तन्मध्यप्राप्तजीवनः ॥३५॥

चतुर्युक्ताशीतिलक्ष-वर्षायुरभवत्प्रभुः ।
चापाशीत्युन्नति बिभ्रद्दिवाकरजयी रुचा ॥३६॥

एकविंशतिलक्षाब्दपर्यंतं बालकेलिषु ।
आसक्तः स्वेच्छया देवा सुखं पित्रोर्ददौ महत् ॥३७॥

कुमारवयसि श्रीमान् रूपलावण्यसागरः ।
अशेषसुरमर्त्यानां मनोहरदवेक्षणः ॥३८॥

नीतिशास्त्रप्रियो नीतिशास्त्राध्ययनतत्परः ।
नीतिशास्त्रोक्तकर्माणि नीतिविन्नीतिमाचरत् ॥३९॥

प्रजानुरागी सततं प्रजारक्षणकोविदः ।
प्रजासंगीतकीर्त्यासौ प्रजानाथममोदयत् ॥४०॥

तारुण्यगमने तस्मै विष्णुभूपतिसत्तमः ।
सर्वथा योग्यमालक्ष्य स्वीयं राज्यं ददौ मुदा ॥४१॥

संप्राप्य पैतृकं राज्यं सिंहासनगतः प्रभुः ।
शुशुभेतितरां दीप्त्या देवेंद्रो व्रीडयन्निव ॥४२॥

तस्य राज्येऽखिला पृथ्वी तस्करैर्वंचकैर्विना ।
परमानंदमानाभूत् निर्भया निरुपप्लवा ॥४३॥

विपक्षाहतपक्षाश्च तं मत्वा विजयेश्वरं ।
रत्नाण्युपायनीकृत्य शरण्यं शरणं गताः ॥४४॥

परैरलंघितं राज्यं संप्राप्य जगदीश्वरः ।
नरेंद्रकन्यासहितः परमं सुखमन्वभूत् ॥४५॥

वहांपर पांडुक शिलापर उसे स्थापित कर क्षीरसमुद्रके जलसे अभिषेक किया, पुनः गंधोदक स्नान भी कराया, विधिके साथ जन्माभिषेक कार्य समाप्त करके देवेंद्रने प्रभुको देवोपनीत आभरणोंके द्वारा विभूषित किया ॥३१-३२॥

तदनंतर जयजयकार करते हुए पुनः राजमहलमें आया, वहांपर देवेंद्रने प्रभुकी पूजाकर उत्तम तांडव नृत्य किया। वे तीन लोक के कल्याण करनेवाले हैं, अतः उनका श्रेयांस ऐसा नाम रखा गया, एवं माताके हाथमें प्रभुको सौंपकर वह देवेंद्र स्वर्ग चला गया ॥३३-३४॥

शीतलनाथके बाद छासठकोटि सागरोंके बीतनेके बाद श्रेयांसनाथ हुए, ८४ लाख वर्षोकी उनकी आयु थी, ८० धनुषका शरीर था, कांतिसे सूर्यको भी जीतते थे। एक्कीस लाख वर्ष उन्होंने बालक्रीडामें व्यतीत किया एवं माता पितावोंको आनंदित किया, कुमार वयमें रूपलावण्यसे युक्त होकर वे समस्त देव-मानवोंको आकर्षित करते थे।

नीतिशास्त्रके प्रति अभिरुचि रखनेवाले प्रभुने नीतिशास्त्रों का अध्ययन कर नीतिशास्त्रोक्तक्रियावोंको नीतिसे आचरण किया। उस प्रजानुरागी प्रभुने प्रजारक्षणकी पद्धतिको जानकर राजाकी प्रशंसा करते हुए प्रजापालन किया उस प्रजाने भी प्रजानाथ राजाको संतुष्ट किया।

तारुण्य वयमें आनेके बाद विष्णुराजाने भी अपने पुत्रको सर्वथा योग्य जानकर अपने राज्यको आनंदके साथ दिया। पिताके राज्यको पाकर सिंहासनपर बैठे हुए प्रभु देवेंद्र के समान वे शोभित होने लगे। प्रभुके राज्यमें कोई चोर, दगाबाज नहीं थे, प्रजा निर्भय, निरुपद्रव होकर रहती थी, शत्रुवोंसे रहित होने के कारण समस्त राजा वगैरे उन्हींके शरणमें पहुंचकर सुखसे रहने लगे, दूसरोंके द्वारा अखंडनीय राज्यको पाकर प्रभुने अनेक राजकन्यावोंके साथ विवाहित होकर सुखका अनुभव किया ॥३५-४५॥

दे[illegible] [illegible] प्रभुः । 
समारुह्य [illegible] ययौ ॥५१॥

तत्र दीक्षा[illegible] गः । 
कृष्णैकादशिकायां स फाल्गुने श्रवणोडुनि ॥५२॥

जैनीं मुक्तिनिदानं स दीक्षां जग्राह तत्त्ववित् । 
सहस्रप्रमितैर्भूपैः सार्धं भूत्वा च दीक्षितः ॥५३॥

सिद्धार्थं स द्वितीयेन्हि भिक्षार्थे गतवान् पुरं । 
नंदिषेणाभिधो राजा तस्मै सद्भोजनं ददौ ॥५४॥

पुनर्वनं समासाद्य द्विवर्षावधि मौनभाक् । 
नाना शुचिप्रदेशेषु तपश्चक्रे स दारुणं ॥५५॥

घातिकर्ममहारण्यं तपोग्निज्वालया तदा । 
भस्मीचक्रे ततो मोह-शत्रुक्षयमपि व्यधात् ॥५६॥

अमायां माघमासस्य तिंदुकवृतले प्रभुः । 
लेभे सः केवलज्ञानं मोक्षसंप्राप्तिकारणं ॥५७॥

तथैवागत्य देवेंद्रः सार्धं निखिलदेवतैः । 
प्रभोस्समवसारं सोऽरचयत्परमाद्भुतं ॥५८॥

कुंथुसेनादिभिस्तत्र यथोक्तैस्सर्वकोष्ठगैः । 
स्तुतस्संपूजितो देवः स्वतेजोभिर्व्यभात्तरां ॥५९॥

संपृष्ठोयं गणेंद्राद्यैः तत्त्वं जिज्ञासुभिस्तदा । 
चक्रे स तत्त्वव्याख्यानं सार्वं धर्मप्रकाशकं ॥६०॥

४२ लाख वर्षोंतक प्रभुने सुखके साथ राज्यका पालन किया। उनके कोई भी शत्रु नहीं थे. एक बार बसंत काल आया, बसंत कालमें सर्व वृक्ष फल फूलसे हरे भरे हो जाते हैं। एवं नियमतः फल–रहित होते हैं। साथ ही वसंतऋतु के बाद उन फलोंसे रहित होते हुए भी देखा. प्रभुने अपने मनमें विचार किया कि समस्त जगत् की यही दशा है. कोई भी विषय स्थिर नहीं है, उसीसमय श्रेयांस प्रभुने इस दुःखसमुद्ररूपी संसारसे वैराग्यको प्राप्त किया ॥४६–४८॥

उसी समय लौकांतिक देव आये, वैराग्यपूर्ण विविध वाक्यों द्वारा प्रभुको संतुष्ट किया। उसी समय जयघोषके साथ देवेंद्र भी उपस्थित हुआ, एवं प्रभुको नमस्कार किया. अपने समस्त परिवार के साथ उप-स्थित होकर विमलप्रभा नामक शिबिकापर आरूढ किया, प्रभुने उसी समय मनोहर वनके प्रति प्रस्थान किया। वहांपर विधिपूर्वक 'नमः सिद्धेभ्यः' मंत्रोच्चारणके साथ प्रभुने फाल्गुन वदी एकादशीके रोज श्रवणनक्षत्रमें दीक्षा ली, उनके साथ हजार राजावोंने भी दीक्षा ली ॥४९–५३॥

दूसरे दिन सिद्धार्थपुरमें भिक्षाके लिए गये, वहांपर नंदिषेण नामका राजा था, उन्होंने विधिपूर्वक प्रभुको आहार दिया, पुनः वनमें जाकर दो वर्षतक मौनधारण किया एवं घोर तप किया। उस तप–रूपी अग्निसे घातिकर्मरूपी भयंकर जंगलको जलाकर मोहनीय कर्म रूपी शत्रुको भी मार डाला. माघमासकी अमावस्याके रोज तिंदुक वृक्ष के नीचे प्रभुने केवलज्ञान प्राप्त किया, जो मोक्षके लिए कारण है। उसी समय पुनः देवेंद्र अपने समस्त देव परिवार के साथ आकर प्रभुके समवसरण की रचना कराई ॥५४–५८॥

समवसरणमें बारह कोठोंकी रचना थी, वहांपर देवेंद्रने प्रभुकी पूजा की, स्तुति की, उस समय प्रभु अपने तेजसे विशेष शोभाको प्राप्त हो रहे थे। जिज्ञासु गणधरादिके द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर प्रभुने दिव्यध्वनिसे सर्व हितकारी धर्मतत्वोंका निरूपण किया। ॥५९–६०॥

वहांपर उपस्थित सर्व भव्योंको उन्होने दिव्यध्वनिके द्वारा आनंदित किया, एवं अनंत सुखके धारी प्रभुने अनेक पुण्यक्षेत्रोमे विहारकर लोककल्याण किया।

जब उनकी आयु एक महिनेकी बाकी रही तब जानकर दिव्यध्वनिका संकोच किया, एवं हजार मुनियोंके साथ सम्मेद-शिखर क्षेत्रपर पहुंचकर एक महिनेतक संकुल कूटपर समा-धियोगमें स्थित रहे। सर्व कर्मोका नाश करनेवाले निर्विकल्पक योग में आरूढ होकर एवं प्रतिमा योगको धारणकर प्रभुने श्रावण पूर्णिमाके रोज समस्त अघातिया कर्मोका नाशकर हजार मुनियोंके साथ बहुत आनंदके साथ सिद्धपदको प्राप्त किया ॥६१-६४॥

तदनंतर उस कूटसे ९६ कोटाकोटि, ९६ कोटि, ९६ लाख ९ हजार ५४२ मुनि सिद्धगतिको प्राप्त हुए, अर्थात् श्रेयांसनाथ तीर्थ-करके बाद उस संकुलकूटसे तपः तेजके द्वारा कर्म क्षयकर मुक्तिको प्राप्त हुए।

तदनंतर आनंदसेन नामक राजाने इस तीर्थराजकी यात्रा की, उस पावन कथाको कहता हूं, उसे श्रद्धाके साथ सुनिये ॥६५-६८॥

इस जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रके आर्यखंडमें नलिन देशमें रम्य कल्पपुर नामका नगर है। वहांपर राजा आनंदसेन हुआ, उसकी रानी विजयसेना नामकी थी, जो सती, सर्वलक्षणसंपन्न और शरत्कालकी चंद्रमाके समान सुंदर मुखकें धारण करनेवाली थी, उसकें साथ वह उस धर्मात्माने पूर्वजन्मकें सुकृतके कारण उत्तमसुखका अनुभव किया क्योंकि धर्म ही सुखका कारण है। एकदिन आम्रवनमें गुणभद्र नामक शीलसंपन्न मुनिराजके आगमनको सुनकर आनंदसेन राजा वहां पहुंचा, और तीन प्रदक्षिणा देकर भक्तिसे नमस्कार कर निवेदन किया कि स्वामिन्! मुझे निर्वाणकी इच्छा है। उसकें लिए प्रयत्न करना चाहता हूं। परिश्रमके साथ तपश्चर्या करना चाहता हूं। इसलिए मुझे आज्ञा प्रदान करें। तब मुनिराजने राजाको कहा कि यदि कल्याण की इच्छा है तो हे महामति ! तुम सम्मेदशिखरकी यात्रा करो ॥६९-७५॥

तुम इसी पर्यायसे मुक्तिको प्राप्त करोगे । मुनिराजके मुखसे सुनकर बहुत प्रसन्न होता हुआ उसी समय आनंद भेरी बजवाकर ॥ संघकी घोषणा कराई, एवं संघपूजाकर उसने बडी भक्तिसे म्मेदशिखरकी यात्रा की, वहांपर संकुलकूटकी भी वन्दना भक्तिसे । तदनन्तर एक करोड भव्योंके साथ दिगंबर तपस्वी हुआ, तपश्च-के द्वारा कर्मोंको दग्धकर उसने मुक्तिको प्राप्त किया ।

इस संकुलकूटके दर्शनसे एक करोड प्रोषधोपवासोंका फल ायासही प्राप्त होता है (सर्व कूटोंके फलसे क्या नहीं प्राप्त होगा ?) प्रकार मुनिराजोंने कहा है । जिस कूटसे भगवान् श्रेयांस-य सर्व कर्मोंको दग्धकर मुक्तिको प्राप्त हुए वह संकुलकूट मेरे ए सतत श्रेयको करनेवाला हो ॥७६–८१॥

इस प्रकार लोहाचार्यकी परंपरामें देवदत्तसूरिविरचित
सम्मेदशिखरमाहात्म्यमे संकुलकूट वर्णनमें
श्रीविद्यावाचस्पति पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री लिखित
भावार्थदीपिका नामकटीकामें

## ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ

## ग्यारहवें अध्यायका सारांश

इस अध्यायमें श्रेयांस तीर्थंकर को नमस्कार कर उनके पूर्व भवोंका वर्णन किया है। वे श्रेयांस तीर्थंकर जिस संकुलकूटसे मुक्तिको प्राप्त हुए उसका भी वर्णन है।

उक्त संकुलकूटसे कितने तपस्वी मुक्तिको गये, श्रेयांस तीर्थं-कर शीतलनाथके बाद कितने वर्षोंके बाद हुए। नंदिषेणके बाद करोडों राजावोंके साथ आनंदसेन राजाने सम्मेदशिखर व उक्त कूटकी यात्रा की, एवं मुक्तिधामको प्राप्त किया। वगैरे वर्णन इस अध्यायमें किया गया है। अतः यह संकुलकूट पवित्र है

सदा ब्रह्मचर्य व्रतको पालन करते हुए सुख के साथ अपने समयको व्यतीत कर रहा था।

सर्व कार्य करनेमें समर्थ, और अवधिज्ञानको भी अपने नियत-प्रमाणसे प्राप्त वह देव निदर्विरोधित स्मरण करते हुए सुखसे अपना समय व्यतीत करता था। जब उसकी आयु छह महिनेकी बाकी रही तब क्या हुआ, उसके निर्मलचरित्रको संक्षेपसे कहता हूं, वह कल्मष को दूर करनेवाला है सज्जनलोग सुने ॥१६-१८॥

जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें उत्तरदिशामें कंपिला नामकी उत्तम नगरी है। उसे कृतवर्म नामक राजा पालन कर रहा था, उसकी रानी जयमाला नामक थी, जो लोकमें सद्गुणोंके कारण प्रसिद्ध थी।

देवेंद्रने अपने अवधिज्ञानसे जान लिया कि इन दंपतियोंके घरमें भावी तीर्थंकर उस देवका अवतार होनेवाला है। कुबेरको रत्नवृष्टि करनेके लिए आज्ञा दी, कुबेरने छह महिने तक आनंदसे रत्नवृष्टि की।

ज्येष्ठ वदी दशमीके रोज रातको सोते हुए जयमालाने सोलह शुभ स्वप्नोंको देखा, और अंतमें अपने मुखमें मदोन्मत्त हाथीका प्रवेश हुआ, ऐसा भी भास हुआ। तदनंतर रानी जल्दी उठी। सुगंधित जलसे यथाविधि मुंह धोकर पति के समीप उन स्वप्नोंके फलको जानने के लिए गई। राजाने बडे आदरके साथ कहा देवी! आवो! रानीने भी उचित आसनपर बैठकर स्वप्नोंको निवेदन किया। एवं उनके फलोंको जाननेकी अपेक्षा की। राजाने भी उन स्वप्नोंको सुनकर बडे आनंदसे कहा कि देवी! सुनो! तुम्हारे गर्भमें तीन लोकोंके आधि-पतिका अवतार हुआ है। तुम सपुत्रा होकर सुपुत्रको जन्म देवेगी।

इसे सुनकर रानी भी बहुत प्रसन्न हुई, गर्भवती वह रानी परम आनंदित हुई, और राजालयमें भी आनंदकी वृद्धि होने लगी। माघ शुक्ल चतुर्दशी उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रमें उत्तम प्रसूतिगृहमें पुत्रका जन्म हुआ ॥१९-२०॥

सार्वाागमैर्गतेतोतिरि ज्ञानत्रितः प्रभुः
दैव्यामधृतईशानः प्राच्यामिव निशाकरः ॥३१॥

तदागत्य सुरेशानः तं देवं देवतान्वितं ।
स्वांके कृत्वागतो मेरुं सदेवो जयनोदवान् ॥३२॥

तत्र क्षीरोदसलिलप्रपूर्णैः हेमकुंभकैः ।
देवमस्नापयद् नयता दिव्यगंधोत्करैस्ततः ॥३३॥

आवृत्याभरणैर्दिव्यै–रश तं बालमीश्वरं ।
कांपिलामगमद्भूपः पुरुहूतस्ससामरः ॥३४॥

नृपांगणे दिव्यपीठे समारोप्य जगत्पतिं ।
नत्वा संपूज्य तस्याग्रे देवेंद्रस्तांडवं व्यधात् ॥३५॥

सर्वार्थविमलत्वात्तद्विमलाख्यां विधाय सः ।
मातुरंके प्रभुं कृत्वा गतोसौ देवतालयम् ॥३६॥

मुक्तिगते वासुपूज्ये त्रिंशत्सागरोपरि ।
तदभ्यंतरजीवी स विमलोऽभान्नृपालये ॥३७॥

षष्ठिचापमितोत्सेधः षष्ठिलक्षाब्दजीवनः ।
जांबूनदप्रभः श्रीमान् विविधैर्बालचेष्टितैः ॥३८॥

पितरौ मोदयामास भाग्यसिंधुर्जगत्प्रभुः ।
कुमारकाले पंचादि–दशलक्षोक्तवत्सरान् ॥३९॥

व्यतीयुरस्याथ तनुः प्राप्ते तारुण्य उत्तमे ।
कृतवर्मा ददावस्मै राज्यं राज्यभरालसः ॥४०॥

राजसिंहासने देवो देवमानवसेवितः ।
शशास पृथिवीं कृत्स्नां निर्विपक्षां स नीतिमान् ॥४१॥

सम्यक् कृत्वा राज्यभोगं विचित्रैः वस्त्ररत्नकैः ।
तुषारपटलं वीक्ष्य विरक्तस्तत्क्षणादभूत् ॥४२॥

दृष्टनष्टहिमानीव दृष्टनष्टमिदं जगत् ।
विचार्य मोक्षसंसिध्यै तपः स्वंसमनसाग्रहीत् ॥४३॥

तदा लौकांतिका देवास्समागत्य जगत्पति ।
प्रशंस्य विविधैर्वाक्यैः मुदमापुस्तदीक्षणात् ॥४४॥

सदेवदेवराजोपि प्रभोरंतिकमागतः ।
उच्चरन् जयनिर्घोषं ववंदे विमलप्रभुं ॥४५॥

वे साक्षात् सूर्यके समान थे. तब स्वर्गमें देवेंद्रने अवधिज्ञानसे जान लिया कि प्रभुका जन्म हुआ। तब वह देवेंद्र अपने परिवारके साथ वहांपर आया।

देवेंद्र प्रभुको लेकर मेरु पर्वतकी ओर गया. उस समय देवगण जयघोष कर रहे थे, वहांपर क्षीरसमुद्रके जलसे एवं गंधोदकसे देवेंद्रने उस बालकका अभिषेक किया. पुनश्च कंपिला नगरीमें ले जानेके उद्देशसे देवेंद्रने अपने परिवारके साथ कंपिला नगरकी ओर प्रस्थान किया, एवं वहां राजांगणमें जगत्पतिको उच्च आसनपर विराजमान कर प्रभुकी पूजा की, एवं प्रभुके सामने तांडव-नृत्य किया। सर्व तत्वोंकी निर्मलताके कारण होनेसे बालकका नाम विमल ऐसा रख गया. तद-नन्तर माताकी गोदमें बालकको देकर देवेंद्र स्वर्गलोकको चला गया।

वासुपूज्य भगवान् के मुक्ति जानेपर ३३ सागर वर्षोंके बाद विमलनाथ तीर्थंकर हुए। साठ धनुष्यका शरीर उन्हे प्राप्त था, और साठ लाख वर्षोंकी आयु थी, सुवर्णके समान जिनके शरीरका वर्ण था. बाल्यकाल की अनेक बाललीलाओंसे उन्होंने मातापिताओंको प्रसन्न किया, एवं १५ लाख वर्षोंको कुमारावस्थामें व्यतीत किया।

तदनन्तर तारुण्यकी प्राप्ति होनेपर कृतवर्मा राजाने अपने राज्यको विमलकुमार के ऊपर सौंपा, विमलनाथने भी देवमानवोंके द्वारा सेवित उस राज्यको न्यायनीतिके साथ पालन किया।

अनेक प्रकारके भोगोपभोगोंसे सुखको अनुभव करते हुए एक दिन ओसके पुंजको देखकर प्रभुको वैराग्य उत्पन्न हुआ। सोचा कि संसार भी इस ओसके पुंजके समान देखते देखते नष्ट होनेवाला है। इस प्रकार विचारकर मोक्षके लिए उन्होंने तपोवनमें जानेकी इच्छा की।

उसी समय लौकांतिक देव आये, और अनेक प्रकारसे प्रभुकी स्तुतिकर संतुष्ट हुए, उसी समय देवेंद्र भी प्रभुके पास आया। जय-घोषके साथ विमलनाथको नमस्कार किया ॥३१-४५॥

# अथ त्रयोदशाध्यायः

अनंतगुणसंपन्नमनंतज्ञानसागरम् ।
अनंतसुखमोक्तारमनंतजिनमाश्रये ॥१॥

स्वयंभूनाम कूटाद्यो गतः सिद्धालयं प्रभुः ।
तत्कथापूर्वकं तस्य कूटं स्तोष्ये यथामति ॥२॥

प्रसिद्धे धातकीखंडे पूर्वमेरौ महान् किल ।
दुर्गदेशोस्ति विख्यातो तत्रारिष्टपुरं महत् ॥३॥

तस्य पद्मरथो राजा गुणज्ञो गुणवान् स्वयं ।
महाप्रतापवानासीदनेकनृपसंस्तुतः ॥४॥

पूर्वजन्मोद्भवैः पुण्यैः राज्यं प्राप्य महान्नृपः ।
अकरोद्राज्यभोगं स देवेंद्रसमवैभवं ॥५॥

एकस्मिन्समये प्राप्तस्तीर्थकर्ता स्वयंप्रभः ।
अभिवंद्याथ तं राजा यतिधर्मान् सुपृष्ठवान् ॥६॥

श्रुत्वा तन्मुखचंद्राच्च यतिधर्मान् सुनिर्मलान् ।
मिथ्यात्ववर्जितो राजा विरक्तस्संबभूव सः ॥७॥

तदाधनरथायासौ राज्यं दत्वात्मजन्मने ।
वनं गत्वा तपो दीक्षां जग्राह परमार्थवित् ॥८॥

एकादशांगभृद्धीरो भावयित्वा स भावनाः ।
अंते सन्यासविधिना तनुं तत्याज धर्मवित् ॥९॥

शुद्धचित्तः षोडशमे कल्पे सोऽच्युतनामनि ।
अहमिंद्रत्वमापेदे पुष्पोत्तरविमानगः ॥१०॥

द्वाविंशतिसमुद्रायुः संप्राप्य सुरसत्तमः
द्वाविंशतिसहस्राब्द परं सोभून्मनोशनः । ॥११॥

द्वाविंशत्युक्तपक्षेषु गतेषूच्छ्वासमग्रहीत्
ब्रह्मचर्यानंतसुखं प्रोत्फुल्लवदनांबुजः ॥१२॥

स्वावधिज्ञानमर्यादं सर्वकार्यकृतिक्षमः ।
अनादिसिद्धान् संध्यायन् षण्मासायुर्बभूव सः ॥१३॥

अथ तस्यावतारस्य कथां श्रवणसौख्यदां ।
कलुषघ्नीं प्रवक्ष्येहं महासुकृतवर्धिनीं ॥१४॥

जंबूद्वीपे पुण्यभूमौ क्षेत्रे भारत उत्तमे ।
कोसले विषयेऽयोध्या त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥१५॥

# तेरहवां अध्याय

अर्थ– अनंत गुणोंसे युक्त, अनंत गुणोंके समुद्र, अनंतसुखको भोगनेवाले अनंतनाथ जिनेंद्रका आश्रय मैं लेता हूं। स्वयंभू नामकूटसे जो प्रभु सिद्धालयको गये उनकी कथाको कहते हुए उस कूटकी भी स्तुति यथामति करता हूं ॥१–२॥

प्रसिद्ध धातकी खंड के पूर्व भागमें दुर्ग नामका देश हैं, जहां अरिष्टपुर नामका नगर है, वहांपर पद्मरथ नामका राजा गुणज्ञ व गुणवान् था. प्रतापी व अनेक राजावोंके द्वारा प्रशंसित था, राज्य पालन कर रहा था, पूर्वजन्ममें अर्जित पुण्यके द्वारा वह राजा उस राज्यको पाकर देवेंद्रके समान सुख भोग रहा था।

एक दिन स्वयंप्रभ तीर्थंकरके समवसरणमें पहुंच कर उक्त राजाने यतिधर्मके विषयमे पृच्छना की ॥३–६॥

तीर्थंकरके मुखसे निर्मल यतिधर्मको सुनकर मिथ्यात्वसे रहित वह राजा संसारसे विरक्त हुआ, और अपने पुत्र धनरथको राज्य देकर वनकी ओर चला गया एवं वहां जाकर दीक्षा ली ॥७–८॥

तदनंतर ग्यारह अंगोंके पाठी होकर षोडश भावना की, अंतमे सन्यास विधिसे शरीर त्यागकर वह धर्मज्ञ निर्मल चित्तधारी योगी १६ वे अच्युत नामक स्वर्गमे अहमिंद्र देव होकर उत्पन्न हुआ। २२ सागरोपमकी आयुको पाकर वह देवोत्तम २२ हजार वर्षोंके बाद मानस आहार ग्रहण करता था। बाईस पक्षोंके बाद वह एकबार श्वासोच्छ्वास लेता था, ब्रह्मचर्य व्रतको उत्तमरूपसे पालन करते हुए अपने पदके योग्य विशिष्ट अवधिज्ञानको प्राप्त कर सर्व कार्योंमे दक्ष वह देव सदा सिद्धोंकी वंदना करते हुए अपने समयको व्यतीत कर रहा था ॥९–१३॥

जब उसकी आयु छह महिनेकी बाकी रही तब उसके अवतारकी कथा जो कि सुननेवालोंको सुखप्रदा है, पापको नाश करने–वाली है, महान् पुण्यको बढानेवाली है, उसे कहता हूं ॥१४॥

जंबूद्वीपकी पुण्यभूमि भरतक्षेत्रमे कोसल देशमे अयोध्या नगरी हैं, जो तीन लोकमें प्रसिद्ध है ॥१५॥

वहांपर इक्ष्वाकुवंशके काश्यप गोत्रमे सिंहसेन नामका महान् पुण्यशाली गुण सागरके समान विद्वान् राजा हुआ ॥१६॥

उस राजाकी रानी जयशामा नामकी थी, जो सुशील, रूपवती एवं सौभाग्यशालिनी थी। उनके घरमें भगवानका अवतार होनेवाला है, यह देवेंद्रने जानकर कुबेरको रत्नवृष्टिकी आज्ञा दी, कुबेरने छह महिनेतक रत्नवृष्टि की, सभी पुरजन आश्चर्य चकित हुए एवं राज महलको मंगलमय जानकर आनंदित हुए ॥१७–१९॥

एक दिनकी बात है, कार्तिक वदी प्रतिपदाके रोज रानीने प्रभात समयमे सोलह स्वप्नोंको देखा, व अंतमे अपने मुखमे मृदगजके प्रवेशको भी देखा, उसी समय वह देवी आश्चर्यके साथ जाग गई, और पतिके पास जाकर अपने सर्व स्वप्नोंको निवेदन किया, पतिके मुखसे उन स्वप्नोंका फल सुनकर महान् हर्षको प्राप्त किया, ॥२०–२३॥

वह अहमिंद्र देव रानीके गर्भमे आया और सर्व प्रकारसे प्रसन्नताका वातावरण निर्मित हुआ। तदनंतर ज्येष्ठवदी द्वादशीके रोज तीन ज्ञानके धारी प्रभुको रानीने जन्म दिया। वह बालक चंद्र और सूर्य के समान तेजःपुंज था। उस बालकसे पूर्व दिशाके समान माता शोभाको प्राप्त होती रही ॥२३–२५॥

उसी समय देवेंद्रने भगवज्जन्मको अवधिज्ञानसे जानकर अपने देव परिवारके साथ प्रस्थान किया एवं वहांसे सूर्यके समान प्रकाशमान बालकको लेकर जयजयकार करते हुए पांडुक शिलाकी ओर गये, वहांपर जिनबालकको स्थापित कर जन्माभिषेक किया, पुनश्च गंधाभिषेक करकेअनेक आभूषणोंसे बालकको श्रृंगार किया, एवं अयोध्या नगरीमें आये। वहांपर राजांगणमे सिंहासनपर जिन बालकको विराजमानकर पूजा की एवं उनके सामने देवेंद्रने यथाविधि तांडव नृत्यको किया। ॥२६–३०॥

अनंतगुणबोधत्वात् अनंताख्यं प्रभोरनु ।
कृत्वा मात्रे समर्प्याथ गतोऽयममरावतीम्                ॥३१॥

श्रीमद्विमलनाथाच्च गतेषु नववार्धिषु ।
तदभ्यंतरजीवी स बभूवानंत ईश्वरः                ॥३२॥

त्रिंशल्लक्षमितायुश्च पंचाशद्धनुरुन्नतः ।
बालकेलिभिरत्यंतं पितरौ चाभिमोदयन्                ॥३३॥

कौमारं सो व्यतीयाथ शरीरे यौवनागमे ।
प्राप्य तत्पैतृकं राज्यं बुभुजे भोगमुत्तमं                ॥३४॥

एकदा सौधमारुह्य सिंहासनगतः प्रभुः ।
तारापातं ददर्शाथ विरक्तस्तत्क्षणादभूत्                ॥३५॥

तारापातवदेषोपि संसारः क्षणभंगुरः ।
अत्र मूढाः प्रमाद्यंते आत्मवंतो न वै बुधाः                ॥३६॥

नरत्वं दुर्लभं प्राप्य तपस्सारं महात्मनां ।
तपसः कर्मणानिर्नाशः कर्मनाशात्परं पदं                ॥३७॥

इति चिंतयतस्तस्य स्तवनार्थं द्विजोत्तमाः ।
सारस्वतास्तदा प्राप्तास्तेजोभिर्भास्करा इव                ॥३८॥

इंद्रोपि स्वावधिज्ञानात् तपः कर्तुं समुद्यतं ।
ज्ञात्वा देवं तदा प्राप स देवो देवसन्निधि                ॥३९॥

तदा सागरदत्ताख्यां शिबिकां देवसंस्तुतः ।
समारुह्य समुत्सह्य सहेतुकवनं ययौ                ॥४०॥

ज्येष्ठमास सितायां हि द्वादश्यां भूमिपैस्सह ।
सहस्रप्रमितैर्दीक्षां जग्राह शिवकारणं                ॥४१॥

ततस्तस्यांतर्मुहूर्ते त्रिबोधनयनस्यहि ।
आसीच्चतुर्थं तं ज्ञानं मनःपर्ययसंज्ञकं                ॥४२॥

द्वितीयदिवसेऽयोध्यां भिक्षार्थं गतवान् प्रभुः ।
विशाखोनृपतिस्तत्र प्रभुं संपूज्य सादरं                ॥४३॥

आहारं कारयामास तत्र साश्चर्यपंचकं ।
गृहीत्वाहारमायातस्तस्मिन्नेव वने प्रभुः                ॥४४॥

द्विवर्षं मौनमास्थाय नाना शुचिपदेषु सः ।
महोग्रं दुस्सहं चक्रे तपश्शिवपदोत्सुकः                ॥४५॥

अनंत गुणोंके स्वामी होनेसे प्रभुका नाम अनंतनाथ ऐसा रखा गया। नंतर माताके वश बालकको देकर देवेंद्र स्वर्गपुरीकी ओर चला गया। श्री विमलनाथ तीर्थंकरके मुक्ति जानेके बाद नौ सागरोपम कालके बाद अनंतनाथ तीर्थंकर हुए ॥३१-३२॥

तीस लाख वर्षकी आयु, पचास धनुष शरीरका उत्सेध, प्राप्त कर बालक्रीडाओंसे मातापिताको यह प्रसन्न करता था,। कुमार अवस्थाको व्यतीत कर यौवनावस्थाको पानेपर पितृदत्त राज्यको प्राप्त किया एवं बडे आनंद के साथ उसे वे भोग रहे थे।

एक दिनकी बात है प्रभु महलके छतपर बैठे थे, नक्षत्रोंको गिरते हुए देखकर उन्हे उसी समय वैराग्य उत्पन्न हुआ, विचार किया कि तारापतनके समान ही यह संसार क्षणभंगुर है, यहांपर अज्ञानी जीव व्यर्थ ही प्रमाद करते हैं, वे आत्मविवेकी बुद्धिमान नहीं हैं।

दुर्लभ मनुष्य जन्मको पाकर विवेकी महापुरुषोंका कर्तव्य है, कि उत्तम तपका आचरण करे. तपसे कर्मका नाश होता है, कर्मनाशसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है ॥३३-३६॥

इस प्रकारका विचार करते हुए प्रभुकी स्तुति करनेके लिए उसी समय लौकांतिक देव आये, जो तेजसे सूर्यके समान थे। इंद्र भी अवधिज्ञानसे प्रभुकी तपोद्यमको जानकर आया, और सागरदत्ता नामक शिबिकापर आरूढ होकर सहेतुकवनकी ओर प्रभुने प्रस्थान किया। ज्येष्ठ सुदी द्वादशीके रोज हजार राजावोंके साथ प्रभुने मोक्षके कारण जिनदीक्षा ली। अंतमुहूर्तमें उन्हे चौथे मनःपर्ययज्ञानकी प्राप्ति हुई ॥३७-४२॥

दूसरे दिन आहारके लिए अयोध्या नगरीमें प्रभुने प्रवेश किया, विशाख राजाने प्रभुको भक्तिपूर्वक आहार दान दिया, उसी समय पंचाश्चर्य भी हुए ॥४३-४४॥

आहार ग्रहण कर प्रभुने पुनः उस वनमें प्रवेश किया। दो वर्षके मौनव्रतको लेकर प्रभुने नानाप्रकारके निर्मल भावोंसे मोक्षपदकी ओर जानेकी इच्छासे उग्रतपका आचरण किया ॥४५॥

चैत्र वदी ३० रोज प्रभुने घातिया कर्मोका नाशकर अश्वत्थ वृक्षके नीचे केवलज्ञानको प्राप्त किया। उस ज्ञानके प्रकाशसे समस्त लोकको एक साथ जाननेके लिए प्रभु समर्थ हुए। वह ज्ञान अभूतपूर्व था। लोकमें उसके प्रकाशसे सर्व पदार्थ एक साथ जाने जाते थे, और वह ज्ञान न भूत और न भविष्यत् में हो सकता था ॥४६-४७॥

केवलज्ञानके प्राप्तिको जानकर देवेंद्र उसी समय आया व केवल-ज्ञान कल्याण के साथ समवसरणकी रचना कराई ॥४८॥

उस समवशरणमे हजारों सूर्योंके प्रकाशको धारण करनेवाले प्रभु भव्योंके द्वारा पूजित होकर शोभाको प्राप्त हुए. जयसेनादि गण-धर यथास्थान द्वादश कोठोंमें बैठकर स्तुति कर रहे थे, प्रभुने दिव्य-ध्वनिके द्वारा तत्वोंका उपदेश किया, अनेक पुण्य क्षेत्रोंमें प्रभुने उनके पुण्यसे विहार किया ॥४९-५१॥

एक मासकी आयु बाकी रही तब प्रभु जानकर सम्मेदशिखर पर पहुंचे। वहां स्वयंभूकूटमें शुक्लध्यानारूढ होकर कायोत्सर्गमें स्थित रहे और माघ वदी द्वादशीके रोज सर्व अघातिया कर्मोको नाशकर छहहजार मुनियोंके साथ मुक्तिपदको प्राप्त किया। जिस कूटकी अपेक्षा सर्व भव्यजन करते हैं ॥५२-५४॥

ऐसे पवित्र स्वयंभूकूटसे जो मुनिराज मुक्तिपदको प्राप्त हुए उनकी मैं प्रतिदिन वंदना करता हूं ॥५५॥

तदनंतर उस कूटसे ९० कोटाकोटि सत्तर कोटि सत्तर लाख सत्तर हजार, सातसौ मुनि मुक्तिधामको प्राप्त हुए। उनकी परंपरामे महान् धार्मिक चारुसेन नामका राजा हुआ, जिसने संघ संचालन कर सम्मेदशिखरकी यात्रा की ॥५६-५८॥

उस कथाको सुननेसे पुण्यकी वृद्धि होती है, और मुक्तिकी प्राप्त होती है, या मुक्तिको प्रदान करनेवाली है, उस कथाको कहता हूं, धर्मवत्सल भव्यलोग उसे सुने ॥५९॥

जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें कोसांबी नामक नगरी है, वहांपर बुद्धि-मान् श्रेष्ठी वातसेन नामका था ॥६०॥

# अथ चतुर्दशोध्यायः

[illegible] ।
[illegible] ॥१॥

[illegible] ।
[illegible] ॥२॥

धातकीनाम [illegible] पूर्वे [illegible] ।
सीता दक्षिण भागेस्ति [illegible] ॥३॥

सुसीमा नगरं तत्र राजा दशरथो महान् ।
प्रतापवान् मित्रगणाल्हादने पूर्णचंद्रमाः ॥४॥

शत्रूणां कालरूपश्च स्वर्णकांतिः ज्वलत्तनुः ।
धर्मकल्पद्रुमरूपोसौ शशास पृथिवीं प्रभुः ॥५॥

स शरत्पूर्णिमां दृष्ट्वा पूर्णचंद्रसमुज्वलां ।
नश्वरीं तत्क्षणादेव विरक्तोऽभूत्स्वराज्यतः ॥६॥

राज्यं महारथायाथ दत्तं स्वात्मभुवे तदा ।
तपो दीक्षां स जग्राह विपिने मुनिसेविते ॥७॥

एकादशांगधृक् सोथ षोडशामलभावनाः ।
भावयित्वा ववंधासौ गोत्रं तीर्थंकरं वरं ॥८॥
अंते सन्यासविधिना प्राणत्यागं विधाय सः ।
सर्वार्थसिद्धिमगमत् तत्र प्रापाहमिंद्रताम् ॥९॥
तत्र प्रभुर्यथोक्तायुराहारोच्छ्वाससंयुतः ।
त्रिज्ञानाधीश्वरो भूत्वा सर्वकार्यक्षमोभवत् ॥१०॥
परमानंदभोक्ता स सिद्धध्यानपरायणः ।
तत्र षण्मासशिष्टायुः तथानासक्तमानसः ॥११॥
ततः च्युतो यत्र देशे यन्नृपस्य शुभे गृहे ।
अवतीर्णो जगत्स्वामि तद्वक्ष्ये शृणुतामलाः ॥१२॥
जंबूमति महापुण्ये द्वीपे क्षेत्रे च भारते ।
कोसलाख्ये शुभे देशे भाति रत्नपुरं महत् ॥१३॥
इक्ष्वाकुवंशे सद्गोत्रे काश्यपे भानुभूपतिः ।
अभवत्तत्पुरत्राता अद्भुताय निधिर्महान् ॥१४॥
सुव्रता तस्य महिषी सती धर्मपरायणा ।
त्रिजगत्सुंदरी मौलिरत्नं स्त्रीरत्नसंज्ञिता ॥१५॥

# चौदहवां अध्याय

पुण्यशील भव्योंको जिन्होंने दशविध धर्मोका उपदेश दिया ऐसे र्मनाथको हम सदा नमस्कार करते हैं ॥१॥

जिन्होंने धर्म और अधर्मको विभागकर शुक्लध्यानके बलसे त्तवर कूटसे मुक्तिको प्राप्त किया, ऐसे धर्मनाथके शुभचरित्रका थन करता हूं॥२॥

धातकी खंडद्वीपके उत्तम विदेह क्षेत्रमे सीता नदीके दक्षिण ागमें वत्स नामक सुंदर देश है, जहां सुसीमा नामक नगर है, वहां ा राजा महान्, प्रतापी मित्रगणोंको आल्हाद करनेमे चंद्रमाके मान, दशरथ नामका था, वह शत्रुवोंको कालरूप था, सुवर्णकांतिके मान तेजःपुंज शरीरके धारक था, धर्मकार्यको करते हुए धर्ममूर्ति ह राजा इस राज्यका पालन करता था।

एक दिन शरात्पूर्णिमाके रोज चंद्रमाको देखकर इस संसारकी श्वरताका अनुभव हुआ तो तत्काल वैराग्य संपन्न हुआ, महारथ ामक अपने पुत्रको राज्य देकर उसीसमय दीक्षा ली।

एकादशांगोंका पाठकर एवं षोडश भावनावोंको भाते हुए तीर्थं-र गोत्रका बंध किया, अंतमें सन्यास विधिसे मरण पाकर सर्वार्थ-द्धिमें अहमिंद्र देव होकर उत्पन्न हुआ, वहां यथोक्त तेतीस सागरो-मकी आयु पाकर आहार उच्छ्वास आदिके नियमके साथ तीन ानके धारी वह देव सर्व कार्यमे समर्थ होकर परमानंदको प्राप्त हो या, सदा सिद्धध्यानमे व्यस्त रहता था।

तदनंतर वहां उसकी आयु छह महिनेकी बाकी रही, वह वहांसे युत होकर जिस देशमें जिस राजाके गृहमे जन्म लेगा उसकी कथा ों कहता हूं, निर्मल चित्तसे सुनिये ॥३-१२॥

महापुण्यशील जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें कोसल नामक देश है, हां रत्नपुर नामका नगर है, वहां इक्ष्वाकुवंशमें काश्यप गोत्रमें भानु ामक राजा हुआ, जो न्यायनिष्ठ व वैभवसंपन्न था। सुव्रता सकी पत्नी थी, जो सती धर्मपरायण, तीन लोकमे सुंदरी, स्त्रियोंमें ूडामणि होनेके कारण स्त्रीरत्नके नामसे प्रसिद्ध थी ॥१३-१५॥

एकदा सौधर्मो देवः सिंहासननिराजितः ।
घनेषु धनुरुद्वीक्ष्य नश्वरं नश्वरीं स्थिरम् ॥३१॥
विचार्य मनसा तत्र वैराग्यं मोक्षकारणं ।
अगमत्तत्क्षणादेव भव्यजीवशिरोमणिः ॥३२॥
लौकांतिकास्तदागत्य कलवर्णाभिः पदैः ।
तद्वैराग्यप्रशंसां ते चक्रुर्विमलविग्रहाः ॥३३॥
इंद्रादयोपि संप्राप्ता देवस्तुतिपरायणाः ।
प्रणेमुस्तं महेशानं भूम्यामाधाय मस्तकं ॥३४॥
तदा राज्यं स्वपुत्राय समर्प्य जगदीश्वरः ।
नाभिदत्ताभिधां देवोपनीतां शिविकां वरां ॥३५॥
सुरैः रूढां समारुह्य प्रोच्चरन्भिर्जयस्वनं ।
लवणाख्यं स्तुतो देवैः वनं स समुपाययौ ॥३६॥
माघशुक्लत्रयोदश्यां पुष्यर्क्षे भव्यभूमिपैः ।
सहस्रप्रमितैः सार्धं दीक्षां जग्राह तद्वने ॥३७॥
त्रिज्ञानस्वामिनस्तस्य चतुर्थज्ञानमुत्तमं ।
तदैवाचिरमूदंतर्मुहूर्ते जगदीशितुः ॥३८॥
पुरं पाटलिपुत्राख्यं द्वितीयेन्हि गतः प्रभुः ।
भिक्षार्थं धन्यसेनाख्यो भूपतिस्तमपूजयत् ॥३९॥
परमेश्वरबुध्या तं संपूज्य विधिवन्नृपः ।
दत्वाहारं तदा तस्मै पंचाश्चर्याण्यवैक्षत ॥४०॥
छद्मस्थ एकवर्षं स नानादेशं गतः प्रभुः ।
महाघोरं तपश्चक्रे शीतवातातपान् सहन् ॥४१॥
भस्मीकृत्याथ घातीनि पौष्ये सत्पूर्णिमा दिने ।
तूणीवृक्षतले ज्ञानं केवलं प्राप्तवान् प्रभुः ॥४२॥
यथादर्शे मुखांभोजं प्राप्ते सम्यक्प्रदृश्यंते ।
लोकालोकद्वयं तद्वत् वीक्ष्यते तत्र केवले ॥४३।
तदा समवसारं ते तं कल्प्याद्भुतमीश्वरं ।
तत्रस्थं पूजयामासुः देवा इंद्रपुरोगमाः ॥४४॥
भव्या अरिष्ठसेनाद्याः गणेंद्राश्च तदादिकाः ।
सर्वे द्वादशकोष्ठेषु यथोक्ता तस्थुरुत्तमाः ॥४५॥

स्वाभिर्विभूतिभिर्दीप्तः प्रभुः पृष्ठो मुनीश्वरैः ।
दिव्यनादेन सर्वेभ्यः चक्रे धर्मोपदेशनम् ॥४६॥
उच्चरन् दिव्यनिर्घोषं सर्वेषां संशयान् दहन् ।
पुण्यक्षेत्रेषु देशेषु विजहार जगत्पतिः ॥४७॥
जीवनं मासमात्रं स्वं प्रबुध्य परमेश्वरः ।
संहृत्य दिव्यनिर्घोषं सम्मेदाचलमभ्यगात् ॥४८॥
सदत्तवरसत्कूटे शुक्लध्यानकृतादरः ।
प्रतिमायोगवान् ज्येष्ठ–चतुर्थ्यां शुक्लतामृति ॥४९॥
कर्मबंधविनिर्मुक्तः सहस्रमुनिभिस्समं ।
जगाम देवा कैवल्यं दुर्लभं मुनिवांछितं ॥५०॥
एकोनविंशत्कोटीनां कोटिस्तस्मात्प्रभोरनु ।
एकोनविंशत्कोट्यस्तु नवलक्षस्तयेरिताः ॥५१॥
नवैव च सहस्राणि तथा सप्तशतानि च ।
पंचोत्तरनवत्यासंयुतानीत्येव संख्यया ॥५२॥
गणिता दत्तधवलात् भव्या मुक्तिपदं गताः ।
ईदृशो दत्तधवलः कूटस्साम्मेदिकः स्मृतः ॥५३॥
अथ श्रीभावदत्ताख्यो नृपस्सम्मेदभूभृतः ।
यात्रां कृत्वा गतो मुक्ति वक्ष्येहं तत्कथां शुभां ॥५४॥
द्वीपे जंबूमति ख्याते भरतक्षेत्र उत्तमे ।
पांचालविषये भाति श्रीपुरं श्रीनिकेतनं ॥५५॥
भावदत्तो नृपस्तत्र सम्यक्त्वादिगुणान्वितः ।
महेंद्रदत्तया देव्या रराजेव हरिः श्रिया ॥५६॥
चिरं बुभोज राज्यं स सर्वसौख्यरसान्वितं ।
धर्मविन्नीतिविद्वंद्यः शास्त्रविद्धर्मकार्मुकः ॥५७॥
उपाविशत्सभामध्ये सौधर्मेंद्रस्स एकदा ।
नानागीर्वाणदृग्भृंगसमारोप्य मुखांबुजः ॥५८॥
तत्र प्रसंगश्चलितः क्षेत्रे कोप्यस्ति भारते ।
सम्यक्त्वगुणसंपन्नः तदा प्राह स्वयं हरिः ॥५९॥
भावदत्ताभिधो भूप एकस्सयवत्यसंयुतः ।
कीर्त्या भूमितले भाति कौमुद्या ग्लौरिवांबरे ॥६०॥

तीर्थंकरोचित सर्व वैभव उन्हे प्राप्त थे, मुनियोंके द्वारा पृच्छना होनेपर प्रभुने दिव्यध्वनिके द्वारा सबको धर्मोपदेश दिया. दिव्यध्वनिके द्वारा प्रभुने जो तत्वोपदेश दिया, उससे सबोंका संदेह दूर हुआ, एवं प्रभुने दिव्यध्वनिके द्वारा उपदेश देते हुए अनेक पुण्यक्षेत्रोमें विहार किया, क्योंकि प्रभुका समवसरण वहींपर जाता है, जहांके जीवोंका पुण्योदय हो ॥४६॥४७॥

इस प्रकार सर्वत्र विहार करते हुए जब प्रभुकी आयु एक महिनेकी बाकी रही तब प्रभुने दिव्ध्वनिका उपसंहार किया, एवं सम्मेदशिखर तीर्थराजपर जाकर विराजमान हुए ॥४८॥

सम्मेदशिखर पर पहुंचकर प्रभुने दत्तवरकूटपर प्रतिमायोग धारणकर ज्येष्ठ सुदी चौथके रोज सर्व अघातियां कर्मोंका नाशकर हजार मुनियोंके साथ मुक्तिधामको प्राप्त किया ॥४९॥५०॥

उसके बाद उस कूटसे १९ कोटाकोटि १९ करोड नौ लाख नौ हजार सातसौ पंचान्नवे मुनिगण मुक्तिको प्राप्त हुए ॥५१–५३॥

तदनंतर भावदत्त नामक राजा उस सम्मेदशिखरकी यात्राकर मुक्तिको गया उसकी शुभकथाको कहता हूं ॥५४॥

इस जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमे पांचाल नामका देश है, जहां अतीव रम्य श्रीपुर नामका नगर है, वहांपर सम्यक्त्वादि गुणोंसे युक्त भावदत्त नामका राजा न्यायनीतिसे राज्य पालन करता था. महेंद्र दत्ता नामकी रानीके साथ चिरकाल सुख भोगते हुए वह धर्मज्ञ, नीतिज्ञ व शास्त्रज्ञ राजा धर्मकर्मको करते हुए समय व्यतीत करता था, जैसे कि श्रीकृष्ण लक्ष्मीके साथ शोभित हो रहे थे ॥५५–५७॥

एक दिनकी बात है, देवसभामें प्रविष्ट देवेंद्र अनेक देवोंके बीचमें बैठे हुए अनेक विषयोंपर चर्चा कर रहा था. उस बीचमें एक प्रसंग उपस्थित हुआ । इस भूलोकमें भरतक्षेत्रमे दृढ सम्यग्दृष्टी जीव कोई है क्या ? तब देवेंद्रने कहा कि, भावदत्त नामक राजा सम्यक्त्व गुणसे युक्त है, और उसकी कीर्ति सारी पृथ्वीपर व्याप्त है ॥५८–६०॥

# अथ षोडशाध्यायः

कूटं ज्ञानधरं वंदे कुंथुनाममहेशितुः ।
यतो मुक्तिपदं यातः कुंथुनाथो जगत्पतिः ॥१॥
भव्यरक्षाकरो यस्तु कुंथित्वा पापसंचयं ।
मनसा वचसा मूर्ध्ना कुंथुनाथं तमाश्रये ॥२॥
तस्याथ तस्य कूटस्य चरितं पुण्यसूचकं ।
माहात्म्यं विमलैः श्लोकैः वक्ष्ये श्रुणुत सज्जनाः ॥३॥
जंबूद्वीपे विदेहेस्मिन् पूर्वे सीता सरीतटे ।
दक्षिणे वत्सविषयो भव्यानामाकरो महान् ॥४॥
नाम्ना सिंहरथस्तत्र तेजो राशिर्महाशयः ।
राजा बभूव धर्मात्मा पराक्रमनिधिर्महान् ॥५॥
त्रुट्यत्तारामेकदासौ दृष्ट्वा प्राप्य विरक्ततां ।
राज्यं समर्प्य पुत्राय बहुभिः सह भूमिपैः ॥६॥
दीक्षां गृहीत्वागान्येका–दशसंधार्य वै ततः ।
पूर्वांश्चतुर्दशाधीत्य भावयित्वा स भावनाः ॥७॥
संबध्वा तीर्थंकृद्गोत्रं तपस्तप्त्वा वने महत् ॥
सन्यासेनायुषांते स तनुं त्यक्त्वाथ दीपितं ॥८॥
सर्वार्थसिद्धावभवदहमिंद्रस्सुरार्चितः ।
त्रित्रिंशत्सागरायुस्तत्सुखं सः समन्वभूत् ॥९॥
तत्रोक्ताहारनिश्वाससामर्थ्यपरिपूरितः ।
सिद्धानंचंदत ध्यात्वा सम्यग्भावसमन्वितः ॥१०॥
पुनर्येन प्रकारेणावतरद्वसुधातले ।
तद्वक्ष्ये संग्रहेणाहं ध्यात्वा चित्ते तमेव हि ॥११॥
जंबूमति महाद्वीपे भारते क्षेत्र उत्तमे ।
कुरुजांगलदेशोस्ति प्रसिद्धो धर्मसागरः ॥१२॥
हस्तिनागपुरे तत्र कुरुवंशेऽतिनिर्मले ।
सूर्यसेनोऽभवद्राजा तेजसा सूर्यसन्निभः ॥१३॥
श्रीकांता तस्य महिषी भूमिगा श्रीरिवापरा।
सतीधर्मयुताशीलराशिस्सर्वगुणान्विता ॥१४॥
षण्मासस्याग्रत एवास्य भवने धनदः स्वयं ।
शक्राज्ञाप्तः सुरत्नानि ववर्ष घनवन्मुदा ॥१५॥

# सोलहवां अध्याय

अर्थः– कुंथुनाथ स्वामीने जिस कूटसे मुक्तिको प्राप्त किया, उस ज्ञानधरकूटकी मैं वंदना करता हूं. पापसंचय को नाशकर जो भगवान् कुंथुनाथ भव्योंकी रक्षा करते हैं, उनका मैं मनवचनकायसे आश्रय करता हूं. उस पुण्यजनक कूटके माहात्म्यको मैं निर्मलश्लोकोंसे कहता हूं, सज्जन लोग उसे सुनें ॥१॥२॥३॥

जंबूद्वीपके विदेह क्षेत्रके पूर्व दिशाके सीता नदीके दक्षिणमे वत्स नामका देश है, जो कि भव्योंके लिए स्थानभूत है । उस देशका राजा सिंहरथ था, जो तेजःपुंज, कीर्तिशाली, धर्मात्मा महापराक्रमी था ।

एकदिन आकाशमे ताराके टूटनेको देखकर उसे संसारसे वैराग्य उत्पन्न हुआ, और राजाने अपने पुत्रको राज्य देकर अनेक राजाओंके साथ दीक्षा ली, दीक्षा लेकर ग्यारह अंग, चतुर्दश पूर्वोका अध्ययन किया, षोडशकारण भावनाओंकी भावना की, एवं तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया ।

उसके बाद घोर तपश्चर्याकर आयुष्यके अंतमे समाधिमरणसे देह त्यागकर सर्वार्थसिद्धिमे अहमिंद्र देव होकर उत्पन्न हुआ, तेतीस सागरकी आयु और उसीके हिसाबसे होनेवाला आहार श्वासोच्छ्वास अवधि इत्यादिको पाकर सिद्धोंकी वंदना करते हुए वहांके सुखका अनुभव किया । एवं सदा सम्यक्त्व की भावना करते हुए अपने समयको व्यतीत करता था । तदनंतर उसका अवतार इस भूमंडलपर किस प्रकार हुआ, उस विषयको संक्षेपके साथ कहता हूं, उसे सुनिये ।

इस जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रके कुरुजांगल देशमे हस्तिनापुर नामक एक नगर है, जो कि धर्मके लिए सागरके समान है, वहां कुरुवंशके अधिपति सूर्यसेन नामका राजा हुआ जो कि तेजसे साक्षात् सूर्यके समान ही था, उसकी पट्टरानी श्रीकांता नामकी थी, जो कि पृथ्वीमे साक्षात् लक्ष्मीके समान थीं, सती, धर्मनिष्ठा, शीलवती, और सर्व गुणोंसे युक्त थी । देवेंद्रकी आज्ञासे कुबेरने छह महिने पहिलेसे ही ...रत्नवृष्टि की ॥१२–१५॥

तदा [illegible] [illegible] ।
[illegible] रुक्मसेनाख्यमानसः ॥६१॥
एकस्मिन् समये तत्रैव [illegible] [illegible] ।
कोमलाख्यं गिरिवरं गतः सुरनिर्मितं ॥६२॥
मुनीन [illegible] तत्र कृत्वा [illegible] तं ।
सम्मेदशैलयात्रां स तेन सार्धं चकार सः ॥६३॥
तदा शिखरमाहात्म्यं श्रुतं मुनिमुखान्महत् ।
तदैवाति[illegible] यात्रायै [illegible] ॥६४॥
सत्वरं गृहमागत्य नत्वा [illegible] ।
सार्धं सर्वैः स बहुभिः गिरियात्रां मुदा व्यधात् ॥६५॥
यात्रां कृत्वा तु [illegible] विरागस्तं गतोऽर्थतं ।
एकोनशतकोट्युक्ता भव्यैस्सह स भव्यराट् ॥६६॥
दीक्षां गृहीत्वा तत्रैव तपः कृत्वा सुदारुणं ।
निहत्य घातिकर्माणि विरागो गतकल्मषः ★ ॥६७॥
केवलज्ञानमासाद्य शुक्लध्यानधरस्तदा ।
सर्वैस्सह गतो मुक्ति सर्वसंसारदुर्लभं ॥६८॥
संवलाख्यस्य कूटस्य वंदने फलमीदृशं ।
बुद्धिगोचरमेवेदं वक्तुं नैवात्र शक्यते ॥६९॥
निश्चयाद्योऽभिवंदेत कूटं संवलमुत्तमं ।
पण्णवत्युक्तकोट्युपेत व्रतजं सुफलं भवेत् ॥७०॥
वंदनादेककूटस्य तिर्यङ्नरकयोर्गती ।
नैव सर्वनमस्कारं फलं प्रभुरिवोच्चरेत् ॥७१॥
वंदेत यश्शिखरिणं सम्मेदाख्यं नरोत्तमः ।
सः क्रमादुदुःखकल्लोलं तरेत्संसारसागरं ॥७२॥
मल्लिनाथप्रभुर्मोक्षसिद्धि यतस्स तपोदग्धकर्मागतस्तीर्थकर्ता ।
भव्यवृंदैस्समाराधितं पूजितं वंदितं संवलाख्यं स्मर त्वं सदा ॥७३॥

इति भगवल्लोहाचार्यानुक्रमेण देवदत्तसूरिविरचिते
सम्मेदशिखरमाहात्म्ये संवलकूटवर्णनो नाम
अष्टाशोऽध्यायः समाप्तः

★ घातिनि किल कर्माणि निहत्य गतकल्मषः इति क. पुस्तके

सदा पुण्य कार्योंमें अभिरुचि रखते हुए बुद्धिमान् प्रतापी कुमार धार्मिक कार्योंमें रत रहता था। एक दिन वह तत्वसेन राजा अपनी इच्छासे कोसलनागक पर्वतपर गया. वहांपर सुलोचन नामक मुनि थे, उनको भक्तिसे वंदनाकर सम्मेदशिखरके संबंधमें वार्तालाप किया, मुनिराजके मुखसे जब सम्मेदशिखरके माहात्म्यको सुना तभी तत्वसेनके हृदयमें यात्राकी भावना जागृत हुई, शीघ्र ही अपने घरपर जाकर चतुस्संघको लेकर पर्वतराजकी वंदनाके लिए निकला, वहां जाकर अत्यंत भक्तिसे यात्रा की। यात्रा करनेके बाद उसके हृदयमें संसारसे विरक्ति हुई, उसीसमय ९९ करोड भव्योंके साथ दीक्षा ली, तदनंतर घोर तपश्चर्याकर घातिया कर्मोंको नाश किया. तदनंतर केवलज्ञानको प्राप्त किया, शुक्लध्यानके बलसे शेष कर्मोंका भी नाश-कर सर्व भव्योंके साथ संसारदुर्लभ मुक्तिको प्राप्त किया, संबल नामक कूटके दर्शनसे यह महान् फल प्राप्त होता है, यह बुद्धि गोचर ही है, वचनसे वर्णन करनेके लिए समर्थ नहीं है, दृढभक्तिसे जो भव्य संबलकूटकी वंदना करता है उसे छानवे करोड उपवासोंका फल मिलता है। इस एक कूटकी वंदनासे तिर्यंच व नरक गतिका बंध रुक जाता है, फिर सर्व कूटोंके दर्शन का फल भगवान् ही जाने ॥६१-७१॥

जो सम्मेदशिखरकी वंदना भक्तिसे करता है वह क्रमसे संसार समुद्रको पार करता है। मल्लिनाथ भगवान्ने जिस कूटसे कर्म नाश-कर मुक्तिपद भी प्राप्त किया, भव्यजनोंके द्वारा पूजित उस संबल कूटका आप सदा स्मरण करें ॥७२॥७३॥

इस प्रकार लोहाचार्यकी परंपरामें देवदत्तसूरिविरचित
सम्मेदशिखरमाहात्म्यमें संबलकूटवर्णनमें
श्रीविद्यावाचस्पति पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री लिखित
भावार्थदीपिकानामकटीकामें
**अठारहवां अध्याय समाप्त हुआ**

## अठारहवें अध्यायका सारांश

मल्लिनाथके पंचकल्याण व संबलकूट, कूटदर्शन करनेवाले राजा, फलका भी इसमें वर्णन है।

—०—

कोटिप्रोषधफलभाग्भवेदभावेककूटमभिवंद्य ।
वंदेत योऽखिलानि प्राप्नोत्येवामृतालयं सुज्ञः ॥७६॥
श्रीमुनिसुव्रत इदगाद्यस्मात्कूटादनंतसुखभूमि ।
भव्यैर्वंदितमनिशं निर्जरकूटं नमामि तं भक्त्या ॥७७॥

—०-०—

पौरदृक्कुमुदाल्हादी विश्वसंतापखंडनः ।
ववृधे बालसदने व्योम्नि बालविधुर्यथा ॥४७॥
सार्धसप्तसहस्राब्दा गता बाल्येस्य केलिभिः ।
ततोयं पैतृकं राज्यं संप्राप्याभाद्रविद्युतिः ॥४८॥
महापुण्यस्वरूपस्य महापुण्यकृतः प्रभोः ।
महाप्रभाविनश्चास्य सिद्धयो दासतां ययुः ॥४९॥
घनध्वनि वारणेंद्रं समारुह्यैकदा नृपः ।
गतो वनविहारार्थं प्रभुर्वर्षासमागमे ॥
तं ददर्श गजश्चैको वने तद्दर्शनात्तदा ।
पूर्वजन्मस्मृतिस्तस्याऽभवत् स मनसा स्मरन् ॥
अभवं नागदत्ताख्यो धनी स्वे पूर्वजन्मनि ।
मायोदयरसास्वादी ततोहं गजतां गतः ॥
इति ज्ञात्वा जहौ वारि तथाहारं स वारणः ।
तद्व्यवस्थां विलोक्यासौ प्रभुः स्वावधिबोधतः ।
ज्ञात्वा तत्पूर्वपर्यायं कथयत् वाचतं प्रति ।
स्वयं विरक्तिमापन्नो राज्यं दत्वा स्वसूनवे ।
संग्रह्य मुक्तिमार्गं स ज्ञात्वासारं च संसृति ।
सहस्रभूमिपैः सार्धं लौकांतिकसमा स्तुतः ॥
देवैः कृतोत्सवं पश्यन् शिबिकामपराजितां ।
समारूढो वने रम्ये विजयाख्ये जगत्पतिः ॥५
वैशाखशुक्लदशमी तिथौ वेलोपवासकृत् ।
दीक्षां मोक्षाय जग्राह तपःसारं विचारयन् ॥

इसकी वंदनासे करोड प्रोषधोपवासका फल मिलता है, जो उसकी वंदनाकर वह फल प्राप्त करता है तो सर्व कूटोंकी वंदनासे अमृत आलय अर्थात् सिद्धधामको निश्चितरूपसे प्राप्त करता है। जिस कूटसे मुनिसुव्रतनाथ भगवान् मुक्तिको गये, उस अनंतसुखके स्थानको सदा भव्यजन वंदना करते हैं, उस निर्जरा कूटको मैं भक्तिसे वंदना करता हूं ॥७६॥७७॥

—०○—

जिसप्रकार चंद्रमा पूर्वदिशारूपी नीलकमलोंको प्रफुल्लित करता है, उसी प्रकार वह राजकुमार प्रजाजनरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करता था, चंद्रमा लोकके सर्व संतापको दूर करता है, उसीप्रकार वह राजपुत्र भी लोकके सर्व कष्टोंको दूर करता है, इस प्रकार चंद्रमाके समान वह बालक वहांपर बढने लगा। साडे सात हजार वर्षोंको बालक्रीडावोंसे पूर्ण करनेके बाद वह पैतृक राज्यको प्राप्तकर वह सूर्यके समान तेजःपुंज होकर प्रकाशित होने लगा।

महापुण्य स्वरूप महापुण्यको करनेवाले महाप्रभावी प्रभुको पाकर सर्व भव्योंका समय बडे आनंदके साथ जाने लगा। एकदिन मेघगर्जनाके समान सुंदर हाथीपर चढकर वनविहारके लिए प्रभु वर्षाकालके प्रारंभमें गये, जंगलमें एक हाथीने उन्हे देखा, उस हाथीको देखकर पूर्वजन्मका स्मरण हुआ, पूर्वजन्ममे मैं नागदत्त नामका श्रेष्ठी था, मायाचार ही मेरे जीवनमें मुख्य दिलचस्पीका विषय था, अतः मैं हाथी होकर उत्पन्न हुआ, इस बातको जानकर उस हाथीने भी सर्व आहार व पानीको छोडकर समाधिमरणको धारण किया।

वहां उपस्थित मुनिराजने अपने अवधिज्ञानसे इसके पूर्व पर्यायको अच्छीतहर जानकर उसे अपने पूर्व पर्यायका ज्ञान कराया, राजाने स्वयं वैराग्य संपन्न होकर अपने पुत्रको राज्य प्रदान किया, उसने मोक्षमार्गको प्राप्तकर इस संसारको असारके रूपमें जानकर हजार राजावोंके साथ विरक्तिको प्राप्त किया। उसी समय लौकांतिक देवोने आकर उनकी स्तुति की, देवोंने व देवेंद्रने आकर बहुत बडा उत्सव मनाया, अपराजिता नामक पल्लकीपर चढकर विजय नामके वनमें जगत्प्रभु चले गये, वैशाख शुक्लाष्टमीके रोज दो उपवासको ग्रहणकर मोक्षके लिए तपकी आवश्यकता समझकर दीक्षा ग्रहण की ॥४७–५७॥

# बीसवां अध्याय

अर्थः—मुनियोंके द्वारा सेवित भगवान् नमिनाथके चरण कम-लोंको नमस्कार हो, नमिनाथको सदा भक्तिसे नमस्कार करनेपर स्वर्गकी प्राप्ति होती है, नमिनाथ व वे जिस कूटसे मुक्तिको गये, उस कूटकी कथाको कहूंगा, जो करोडो पापोंको नाश करती है ॥१॥२॥

जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें कोसल नामका देश है, जहां कौशांबी नामकी नगरी यमुना नदीके तटपर विद्यमान है, वहां इक्ष्वाकुवंशमें शार्य नामक राजा हुआ, उसकी रानी सिद्धार्था नामकी थी जो पुण्य-शीला, पतिव्रता, सुंदरी, कीर्तिशाली एवं निर्मलव्रतको धारण करने-वाली थी, उसके साथ नीतिको जाननेवाले नीतिमान् राजाने वहुत समयतक सांसारिक सुखको उपभोग किया ॥३–६॥

एक दिनकी वात है, पासके मनोहर वनमें जगद्वर नामके मुनिराज पधारे हैं, यह समाचार राजाको मिला. उसी समय राजा अपने परिवारके साथ मुनिराजके दर्शन के लिए गया, वहां मुनिराज की वंदनाकर मुनिराजसे श्रावक धर्मका उपदेश सुना. मुनिराजने ग्यारह प्रतिमात्मक श्रावकधर्मका निरूपण किया, उसे सुनकर राजाने सम्यक्त्वसे युक्त होकर श्रावक धर्मको ग्रहण किया। श्रावक धर्मको उत्तम रूपसे पालन करते हुए राजाने न्यायपूर्वक राज्य किया, प्रजा-ओंके अनेक प्रकारके दुःखोंको दूर किया। एक दिनकी बात है, पुनः उसी मनोहर वनमें एक जगद्वन्य नामक मुनिराजका आगमन हुआ, राजा बडी भक्तिसे वहां पहुंचा, और मुनिराजके मुखसे शुद्ध यतिधर्मके उपदेशको सुना, उस उपदेशके सुननेसे तत्काल वैराग्य उत्पन्न हुआ, तव अपने श्रीधर नामक पुत्रको राज्य देकर स्वयं तपोवनकी ओर प्रस्थान किया, मोक्षकी अभिलाषासे दीक्षा लेकर मुनिराजने ग्यारह अंगोका पाठ किया, एवं षोडश भावनावोंको भाकर तीर्थंकर नाम कर्मका वंध किया, आयुके अन्तमें समाधिमरणपूर्वक शरीर त्यागकर परभवमें

मुनिराजने तपके फलसे सर्वार्थसिद्धि नामक उत्तम स्थानको प्राप्त किया, वहां अहमिंद्र होकर तेतीस सागर वर्षोंकी आयु पाकर बहुत सुखसे वह देव अपने समयको व्यतीत करने लगा। तेतीस हजार वर्षोंके बाद आहार, तेंतीस पक्षोंके बाद श्वासोच्छ्वास लेते हुए तथोक्त अहमिंद्रोंके साथ धर्मचर्चा करते हुए अपने समयको अत्यंत शुभ विचारसे उसने व्यतीत किया, अब उसकी आयु छह महिनेकी बाकी रह गई है, आगे उसका जन्म कहां होगा इस विषयके वृत्तको कहता हूं, उसके श्रवणसे सर्व कार्यसिद्धि होती हैं ॥१६–१९॥

जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें वंग नामका देश है, जहां मिथिलानामकी नगरी वहां इक्ष्वाकुवंशमें काश्यपगोत्रमें धर्मात्मा राजा विजयसेन नामका है उसकी रानीका नाम वप्रा है, जो कि पतिके समान ही भाग्यशालिनी थी, उसके साथ राजा सुखको अनुभव करते हुए काल व्यतीत कर रहा था। देवेंद्रने जाना कि वह अहमिंद्र आकर इनके गर्भमें जन्म लेनेवाला है, अतः छह महिने पूर्व कुवेरको आज्ञा देकर रत्नवृष्टि कराई, एवं कुवेरने अपनेको धन्य माना ॥२०–२४॥

तदनंतर आश्विन वदी २ को रानीनें रातके अन्तिम प्रहरमें सोलह स्वप्नोंको देखा, स्वप्नांतमें मुखमें मदोन्मत्त हाथीके प्रवेशको अनुभव किया, तत्काल उठकर राजाके पास वह गई, पतिके मुखसे स्वप्नोंके फल जानकर बडी प्रसन्नताको प्राप्त हुई, ॥२५–२७॥

अहमिंद्र देवने भी उक्त गर्भमें आकर जन्म लिया, उक्त गर्भवती रानीकी सेवा दिक्कुमारी देवियां कर रही थी। आषाढ मासके कृष्ण दशमीके रोज रानीने पुत्ररत्नको जन्म दिया। प्रभुके गर्भमें आनेपर सर्व दिशावोमें सुखमय वायुका संचार हुआ एवं सर्व प्रसन्न हुए। ॥२८–३०॥

[illegible] ।
[illegible] तं [illegible] ॥३१॥

गतवान् [illegible] तत्र [illegible] तं शिशुं ।
[illegible] ॥३२॥

ततो गंगोदकस्नानं [illegible] ।
कृत्वा तं [illegible] ॥३३॥

नृपांगणे तमारोप्य पुनस्संपूज्य सविस्मयः ।
पुरतस्तांडवं कृत्वा प्रसन्नान्निजमानसो ॥३४॥

नमिनाथाभिधां कृत्वा तस्य त्रिज्ञानधारिणः ।
मत्तेन भूभृतःस्वर्गं जगाम स सुराधिपः ॥३५॥

षड्लक्षाब्देषु यातेषु देवात् श्रीमुनिसुव्रतात् ।
तन्मध्यजीवी सम्भूतन्नमिनाथो जिनेश्वरः ॥३६॥

सहस्रदशकाब्दायुरुन्नतोयं शरासनैः ।
पंचाधिकं दशप्रोक्तैः तप्तजांबूनदद्युतिः ॥३७॥

सार्धद्विकसहस्राब्दं–बालकेलिरतप्रभुः ।
सम्यग्व्यतीतकौमारं यौवनाभिगमे तदा ॥३८॥

पैतृकं राज्यमापासौ राज्ये नीतिधर सदा ।
प्रजां ररक्ष धर्मेण पश्यन् तासां विचेष्टितं ॥३९॥

एकदा स प्रभुर्मोदाद्रम्यं वनमगात् स्वयं ।
वसंते पुष्पितांस्तत्र फलितानैक्षत द्रुमान् ॥४०॥

ततो सरोवरे देवो नलिनं मलिनं दृशा ।
समीक्ष्याथ विरक्तोभूत् तद्वत्सर्वं विचारयन् ॥४१॥

ततो लौकांतिकैरीशः स्तुतः शक्राद्यिचंदितः ।
मुदा विजयसेनाख्यामारुह्य शिबिकां वरां ॥४२॥

गत्वा तपोवनं शीघ्रं राज्यं दत्वा स्वसूनवे ।
सहस्रावनिपैस्सार्धमाषाढदशमीदिने ॥४३॥

कृष्णपक्षे स्वयं दीक्षां अग्रहीद्विश्ववंदितः ।
मनःपर्ययवत्वं स लेभे तत्क्षणतो ध्रुवं ॥४४॥

ततो वीरपुरं गत्वा द्वितीयदिवसे प्रभुः ।
पूजितो दत्तभूपेन तत्राहारं समग्रहीत् ॥४५॥

देवेंद्रको ज्ञात होनेपर सपरिवार जयजयकार करते हुए वहां आया, जिनबालकको बहुत प्रेमसे मेरु पर्वतपर ले गया एवं वहां पांडुक शिलापर स्थापितकर यथाविधि क्षीर समुद्रके जलसे बालकका अभिषेक किया, तदनंतर गंधोदकसे अभिषेकपर दिव्य वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत किया, नंतर अपनी गोदमें लेकर मिथिलानगरीकी ओर गया, वहां महलके प्रांगणमें सिंहासनपर प्रभुको विराजमानकर देवेंद्रने बडी भक्तिसे तांडवनृत्य किया, एवं सबको संतुष्टकर तीन ज्ञानके धारक उस बालकका नाम नमिनाथ रखा गया, नंतर देवेंद्र स्वर्ग-लोककी ओर चला गया ॥३१–३५॥

मुनिसुव्रत भगवान्के बाद छह लाख वर्षोंके बाद नमिनाथ हुए दस हजार वर्षकी उनकी आयु थी, पंद्रह धनुष प्रमाण उनका शरीर था, सुवर्ण वर्णको धारण करनेवाले थे । ढाई हजार वर्ष प्रभुने बाल-लीलामें अपना समय व्यतीत किया, नंतर यौवनावस्थाको प्राप्त होनेके बाद पितृराज्यका न्यायनीतिके साथ पालन किया, प्रजावोंको सुखदुःखको देखते हुए धर्मके साथ उनकी रक्षा की । एक दिन प्रभु बडे आनंदके साथ उद्यान वनमें गये, वहांपर वसंतकालमें फले फूले अनेक वृक्षोंको राजाने देखा ॥३६–४०॥

उसके बाद मलिन कमलको देखा, उसी समय राजाके मनमें विरक्ति हुई । सबको उसीके समान समझा । लौकांतिक देव आये नियोगके अनुसार उन्होंने प्रभुकी स्तुति की, देवेंद्रने भी आकर वंदना की । प्रभुने अपने पुत्रको राज्य दिया, तदनंतर विजयसेना नामकी पल्लकीपर प्रभु आरूढ होकर तपोवनमें गये, आषाढ वदी दशमीके रोज प्रभूने हजार राजावोंके साथ स्वयं जिनदीक्षा ली, अंतर्मुहूर्तमें मनःपर्यय ज्ञानको प्राप्त किया, दूसरे दिन प्रभुने वीरपुर नामक नगरमे पहुंचकर दत्त नामक राजाके द्वारा प्रदत्त आहारको यथाविधि ग्रहण किया ॥४१–४५॥

प्रभुके आहार समयमें पंचाश्चर्यकी वृष्टि हुई, पंचाश्चर्य को देखकर सबने जान लिया की ये तीर्थंकर हैं। वेला (दो उपवासके बाद आहार) उपवास करते हुए नौ वर्ष तक प्रभुने मौनसे घातिकर्मको नाश करनेवाली उग्रतपश्चर्या की।

तदनन्तर उसी वनको पाकर प्रभुने मार्गशीर्ष सुदी १५ के रोज केवलज्ञानको प्राप्त किया। उसी समय देवेंद्रने कुवेरको आज्ञा देकर समवसरणकी रचना कराई. सुप्रभ आदि अनेक भव्योंसे सुशोभित, संस्तुत समवसरणमे विराजमान होकर पूछनेपर प्रभुने दिव्यध्वनिके द्वारा तत्वोंका वर्णन किया ॥४६–५०॥

अनेक पुण्यक्षेत्रोमें विहार करते हुए जब एक महिनेकी आयु बाकी रही उसी समय प्रभु सम्मेदाचलपर गये, वहांपर मित्रधर कूटपर विराजमान हुए. नन्तर उत्तमयोगको धारणकर शुक्ल ध्यानके बलसे सर्व कर्मोको नाश किया, और उन साथ दीक्षित हजार मुनियोंके साथ दुर्लभ मोक्षधामको प्राप्त किया ॥५१–५३॥

तदनन्तर उस कूटसे एक अर्वुद नौ सो कोडाकोडी पैंतालीस लाख सातहजार नौ सो बेचालीस मुनियोंने सिद्धधामको प्राप्त किया, ॥५४–५५॥

तदनन्तर मेघदत्तनामके राजाने संघके साथ इस गिरिराजकी वन्दना की, उसकी कथा यहांपर कहते हैं ॥५६॥

जंवूद्वीपके भरत क्षेत्रमें योधनामका देश है, वहांपर श्रीपुर नगरमें महाव्रत नामका राजा था, उसकी रानी शिवसेनाके नामसे प्रसिद्ध थी, इन दोनोंको मेघदत्त नामक वंश को दीपित करनेवाला पुत्र था, जो ज्ञानवान्, गुणवान् शीलवान् एवं धर्मकर्मका अनुष्ठान करनेवाला था, उसकी पत्नी श्रीषेणा अत्यन्त सुन्दरी थी ॥५७–५९॥

एक दिनकी बात है, विजयनामक वनमे वह राजा वनक्रीडाके लिए गया, वहां वसन्तसेन नामक मुनिका दर्शन हुआ ॥६०॥

प्रमोहारसमये पंचाश्चर्याणि भूपतिः ।
समीक्ष्य मनसा नूनं मन्ये तं जगदीश्वरं ॥४६॥

वेलोपवासकृद्देवो नववर्षाणि मौनभाक् ।
तप उग्रं चकारासौ घातिकर्मविनाशकं ।४७।

तदेव वनमासाद्य भूयोसौ तपसोज्वलं ।
पूर्णिमायां मार्गशीर्षे केवलज्ञानवानभूत् ॥४८॥

ततस्समवसारेऽसौ धनदादिविनिर्मिते ।
सुप्रभाद्यैस्तथा चान्यैः भव्यैर्द्वादशकोष्ठगैः ॥४९॥

स्तुतस्संपूजितो भव्यजनैस्संपृष्ट ईश्वरः ।
दिव्यध्वनिं समुद्ग्राह्य चक्रे तत्वादिवर्णनं ॥५०॥

धर्मक्षेत्रेषु सर्वेषु विहरन् स्वेच्छया प्रभुः ।
मासमात्रायुरगमत् सम्मेदाख्यं नगेश्वरं ॥५१॥

तत्र मित्रधराख्यं सत्कूटं संप्राप संस्थितः ।
समारुह्य परं योगं पांडुरध्यानलीनहृत् ॥५२॥

नैष्कर्मसिद्धिं संप्राप्य मुनिभिस्सह दीक्षितैः ।
केवलज्ञानतो मुक्तिमवाप भुवि दुर्लभां ।५३।

तदान्येऽर्बुदनवशतकोट्युक्तकोटिका ।
पंचचत्वारिंशदुक्त-लक्षासप्तसहस्त्रिणः ॥

नवोक्तशतिकाद्व्यंत चत्वारिंशद्युता तथा ।
एतया संख्यया प्रोक्ता भव्यास्तस्माच्छिवं गताः ॥

तत्पश्चान्मेघदत्ताख्यो नृपस्संघप्रपूजकः ।
यात्रां गिरिवरस्यासौ चक्रे तस्य कथोच्यते ॥

जंबूद्वीपे शुचि क्षेत्रे भारते पोधनामभृत् ।
देशास्ति श्रीपुरे तत्र राजा नाम्ना महाव्रतः ॥

अभवत्तस्य राज्ञी तु शिवसेनेति सुंदरी ।
तयोर्नाम्ना मेघदत्तः सुतो वंशप्रदीपकः ॥

ज्ञानवान् गुणवांश्चैव श्रीमान् धर्मकर्मकृत् ।
[illegible] तस्य विख्याता [illegible]शालिनी ॥

[illegible]कदा विजयाख्योऽसौ वने [illegible]मागमत् ।

बहुत आदरके साथ मुनिराजको राजाने प्रणाम किया, नन्तर तत्ववेत्ता मुनिराजसे मुमुक्षु राजाने मोक्षकी सिद्धि के लिए कल्याणके मार्गकी पृच्छना की. तब मुनिराजने सम्मेदाचलपर्वत और उसमें भी मित्रधर कूटकी महिमाका वर्णन किया ॥६१-६२॥

राजाने भी उक्त महिमाको सुनकर नगरमें आकर आनन्दभेरी बजवाई, बहुत बडे परिवार व संघके साथ तीर्थराजकी यात्राके लिए प्रस्थान किया, वहांपर नमिनाथके मित्रधर कूटकी यथाविधि अष्ट द्रव्योंसे पूजा की, एवं अनेक प्रकारसे स्तुति की, और वहींपर अनेक भव्योंके साथ जिनदीक्षा ली. घोर तपश्चर्याकर पैंतालीस अर्बुद भव्योंके साथ शुक्लध्यानसे आरूढ होकर अनन्त आनन्दमय सिद्धोंके आश्रय-भूत मोक्षधामको प्राप्त किया ॥६३-६७॥

एक कूटकी वन्दनासे इस प्रकारका अद्भुत फल जब कहा गया है, तो भव्यगण सर्व कूटोंकी अवश्य भक्तिसे वन्दना करें ॥६८॥

तपके प्रभावसे प्रकटित अत्यन्त उज्वलज्वालासे अज्ञानरूपी अन्धकार जिन्होंने नाशकर केवलज्ञान को प्राप्त किया एवं नन्तर शिवपदको प्राप्त हुए ऐसे नमिनाथ भगवान् एवं उस मित्रधरकूटको मनमें धारणकर मैं नमस्कार करता हूं ॥६९॥

इस प्रकार लोहाचार्यकी परंपरामें देवदत्तसूरिविरचित
सम्मेदशिखरमाहात्म्यमें मित्रधरकूटवर्णनमें
श्रीविद्यावाचस्पति पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्रीलिखित
भावार्थदीपिकानामकटीकामें

**बीसवां अध्याय समाप्त हुआ**

---

## बीसवें अध्यायका सारांश

नमिनाथ तीर्थंकरके पंचकल्याण व तीर्थंकर प्रकृतिका बंधका वर्णन है, उनका जन्म कहां हुआ उन्होंने मोक्षको कैसे पाया, इसका भी वर्णन है, उसके बाद इस मित्रधर कूटसे कितने भव्योंने सिद्ध-धामको प्राप्त किया उसका भी वर्णन है, बादमें मेघदत्त नामके राजाने इस मित्रधर कूटकी वंदनाकर मुक्तिको प्राप्त किया, इस प्रकार मित्रधर कूटकी महिमा कही गई है।

—००—००—

देवेंद्रोपि तदा प्राप्तो जयनिर्घोषमुच्चरन् ।
विमलां शिविकां तस्य पुरस्कृत्य ननाम तं ॥३१॥
तामारुह्य ततो देवः सहेतुकवनं तदा ।
संप्राप्तो मोक्षदीक्षार्थं वैराग्यश्रियमुद्वहन् ॥३२॥
पौषकृष्णदशम्यां स त्रिशतैर्भूमिनायकैः ।
दीक्षां गृहीतवान् सार्धं तत्र मोक्षप्रदां सतां ॥३३॥
चतुर्थबोधं संप्राप्य तदैवान्हि द्वितीयके ।
भिक्षार्थं गुल्मनगरं संप्राप्तोयं यदृच्छया ॥३४॥
धन्याख्यो नृपतिस्तत्र गोक्षीराहारमुत्तमं ।
ददौ संपूज्य तं भक्त्याऽपश्यदाश्चर्यपंचकं ॥३५॥
तपोवनमथ प्राप्य वर्षमेकं स मौनभाक् ।
महातीव्रं तपस्तेपे सहमानपरीषहान् ॥३६॥
चैत्रकृष्णप्रतिपदि तपस्संदग्धकल्मषः ।
देवदारुतले ज्ञानं केवलं प्राप्तवान् प्रभुः ॥३७॥
कृते समवसारेथ धनदेनाद्भुते विभुः ।
सहस्रसूर्यसदृशः स्वतेजोमंडलाद्बभौ ॥३८॥
तत्रोक्तगणनाथाद्यैः स्तुतो द्वादशकोष्ठगैः ।
वंदितः पूजितस्सर्वैः ददर्श कृपयाखिलान् ॥३९॥
गणी प्रश्नात्प्रसन्नात्मा दिव्यध्वनिमथोल्लपन् ।
व्याख्यानं सप्ततत्वानां चकार परमेश्वरः ॥४०॥
विहरन् पुण्यदेशेषु स्वेच्छया जगतां पतिः ।
एकमासायुरुद्वुध्य सम्मेदोपर्यगात् प्रभुः ॥४१॥
सुवर्णभद्रमासाद्य कूटं तत्र महामतिः ।
शुक्लध्यानबलाद्देवोऽपूर्वं मोहमहारिजित् ॥४२॥
कायोत्सर्गं ततः कृत्वा त्रिशतैर्मुनिभिस्सह ।
सिद्धालये मनस्सम्यग्नियोज्याथ तमेव सः ॥४३॥
तत्पश्चाद् भावसेनाख्यो नृपस्संघसमर्चकः ।
तद्यात्रां कृतवान् तस्य कथां वक्ष्ये च पावनीं । ॥४४॥
जंबूमति शुभे क्षेत्रे भारते चार्यखंडके
अनंगदेशो विख्यातः तत्र गंधपुरी शुभा ॥४५॥

# एकीसवां अध्याय

अर्थ:- जिनके चरण कमलोंके ध्यानसे मोक्षसिद्धि पासमें आ जाती है उन पार्श्वनाथ भगवान्को नमस्कार करता हूं। जिनके मस्तकमें सात फणाका मुकुट शोभाको प्राप्त हो रहा है, ऐसे मोक्षधर्मके भगवान् पार्श्वनाथको मैं वन्दना करता हूं ॥१॥२॥

भगवान् पार्श्वनाथकी कथा पंचकल्याण कथनपूर्वक एवं जिस कूटसे वे मुक्ति गये हैं उस कूटकी महिमा मैं कहता हूं भव्यगण सुनें।

जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें काशी नामक देश है जहां उत्तम वारा-णसी नामा नगर है, जो कि अतिरम्य है, वहां आनंद नामक राजा सुखसे राज्य कर रहा था ॥३-५॥

एक दिनकी बात है, राज्य भोगके सुखमें मग्न रहते हुए अपने मुखको दर्पणमें देखा, मुखपर सफेद बालोंको देखकर उसी समय राज्य भोगसे विरक्त हुआ ॥६-७॥

समुद्रदत्त नामक मुनिके पास जाकर अनेक राजाओंके साथ उस पुण्यात्मा राजाने मोक्षसिद्धिके लिए जिनदीक्षा ली। तदनंतर एकादश अंगोंका पाठकर सोलह कारणभावनाओंकी भावना की, एवं तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया। आयुके अन्तमें सन्यासमरणपूर्वक शरीरका त्यागकर प्राणत स्वर्गमें इंद्र होकर उत्पन्न हुआ, वहां प्रति-पादित आयु, आहार, स्वासोच्छ्वासको उत्तम रूपसे प्राप्त कर वहांके सुखको वह इंद्र अनुभव कर रहा था, तथा सिद्धोंके स्मरणमें काल व्यतीत कर रहा था, अब वह देव कहां जाकर उत्पन्न होगा इसकी कल्याण करनेवाली कथाको कहता हूं, जो सज्जनोंके द्वारा सुनने पढने योग्य है ॥८-१३॥

पूर्व वर्णित काशी देश, वाराणसी नगरीमें विश्वसेन नामका राजा हुआ, वामादेवी नामकी उसकी पट्टरानी, उसके साथ विश्वसेन राजा पूर्वपुण्यसे सदा उत्तम सुखको अनुभव करते हुए व्यतीत कर रहा था, उनके महलमें देवेंद्रकी आज्ञासे कुबेरने छह महिने तक

ततो वैशाखमासे हि शुक्लपक्षे नृपप्रिया ।
द्वितीयायां निशांते साऽपश्यत्स्वप्नांश्च षोडश ॥१६॥
मत्तस्तंबेरमं तेषामंते दृष्ट्वा स्ववक्त्रगं ।
प्रबुद्धा भर्तृनिकटं गता देवी शुभानना ॥१७॥
उक्तां तां तत्र सा श्रुत्वा तत्फलानि तदाननात् ।
संधार्य जठरे देवं दिदीपे परमत्विषा ॥१८॥
ततः पौषस्य कृष्णायामेकादश्यां जगत्प्रभुः ।
तस्यामाविरभूत्प्राच्यां बालभानुरिव ज्वलन् ॥१९॥
तदा सौधर्मकल्पेशः सुरैस्सह भवान्वितः ।
तत्रागत्य समादाय प्रभुं स्वर्णाद्रिमाप्तवान् ॥२०॥
तत्राभिषिच्य विधिवत् वार्भिः क्षीरोदसंभवैः ।
भूयो गंधोदकेनाथ संभूष्य वरभूषणैः ॥२१॥
पुनर्वाराणसीं प्राप्य देवं भूपांगणे हरिः ।
मुदा संस्थाप्य संपूज्य विधायाद्भुत तांडवं ॥२२॥
पार्श्वनाथाभिधां तस्य कृत्वा भूपमतेन सः ।
जयध्वनिं समुच्चार्य स देवो दिवमन्वगात् ॥२३॥
त्रियुक्ताशीतिसाहस्र–सार्धसप्तशतेषु च ।
गतेष्वब्देषु नमितो जिनात्पार्श्वेश्वरः प्रभुः ॥२४॥
तदंतरायुस्समभूत् भक्तकल्याणदायकः
शतवर्षप्रमाणायु सप्तहस्तोन्नतस्तथा ॥२५॥
कौमारकाले[१] क्रीडार्थं गतो विपिनमेकदा ।
तत्रापश्यत्त्रिलोकीशः कमठाख्यं तपस्विनं ॥२६॥
पंचाग्नितपसा तप्तं विशुद्धज्ञानवर्जितं ।
जिनागमबहिर्भूत–भासुरं तप आस्थितं ॥२७॥
नागनागिनिकायुक्तं काष्ठमेकं धनंजये ।
ज्वलंतं वीक्ष्य तद्ज्ञात्वा दग्धं प्राणिद्वयं प्रभुः ॥२८॥
अवधिज्ञानतोऽथैन–मुक्त्वा किंचित्तपोधरं ।
तत्क्षणात्स्वयमीशानो वैराग्यं प्राप्तवान् महत् ॥२९॥
लौकांतिकास्तदाभ्येत्य कौमारावसरे प्रभुं ।
विरक्तं संसृतेर्वीक्ष्य तुष्टुवुः बहुधा प्रभुं ॥३०॥

१ कौमार एव इति क. पुस्तके.

देवेंद्रोपि तदा प्राप्तो जयनिर्घोषमुच्चरन् ।
विमलां शिविकां तस्य पुरस्कृत्य ननाम तं ॥३१॥
तामारुह्य ततो देवः सहेतुकवनं तदा ।
संप्राप्तो मोक्षदीक्षायै वैराग्यश्रियमुद्वहन् ॥३२॥
पौषकृष्णदशम्यां स त्रिशतैर्मुनिनायकैः ।
दीक्षां गृहीतवान् सार्धं तत्र मोक्षप्रदां सतां ॥३३॥
चतुर्थबोधं संप्राप्य तदैवान्हि द्वितीयके ।
भिक्षायै गुल्मनगरं संप्राप्तोयं यदृच्छया ॥३४॥
धन्याख्यो नृपतिस्तत्र गोक्षीराहारमुत्तमं ।
ददौ संपूज्य तं भक्त्याऽपश्यदाश्चर्यपंचकं ॥३५॥
तपोवनमथ प्राप्य वर्षमेकं स मौनभाक् ।
महातीव्रं तपस्तेपे सहमानपरीषहान् ॥३६॥
चैत्रकृष्णप्रतिपदि तपस्संदग्धकल्मषः ।
देवदारुतले ज्ञानं केवलं प्राप्तवान् प्रभुः ॥३७॥
कृते समवसारेण धनदेनाद्भुते विभुः ।
सहस्रसूर्यसदृशः स्वतेजोमंडलाद्बभौ ॥३८॥
तत्रोक्तगणनाथाद्यैः स्तुतो द्वादशकोष्ठगैः ।
वंदितः पूजितस्सर्वैः ददर्श कृपयाखिलान् ॥३९॥
गणी प्रश्नात्प्रसन्नात्मा दिव्यध्वानमथोल्लपन् ।
व्याख्यानं सप्ततत्वानां चकार परमेश्वरः ॥४०॥
विहरन् पुण्यदेशेषु स्वेच्छया जगतां पतिः ।
एकमासायुरुद्बुध्य सम्मेदोपर्यगात् प्रभुः ॥४१॥
सुवर्णभद्रमासाद्य कूटं तत्र महामतिः ।
शुक्लध्यानबलाद्देवोऽपूर्वं मोहमहारिजित् ॥४२॥
कायोत्सर्गं ततः कृत्वा त्रिशतैर्मुनिभिस्सह ।
सिद्धालये मनस्सम्यग्नियोज्याप तमेव सः ॥४३॥
तत्पश्चाद् भावसेनाख्यो नृपस्संघसमर्चकः ।
तद्यात्रां कृतवान् तस्य कथां वक्ष्ये च पावनीं । ॥४४॥
जम्बूमति शुभे क्षेत्रे भारते चार्यखंडके
अनंगदेशो विख्यातः तत्र गंधपुरी शुभा ॥४५॥

तदनंतर वह भावसेन राजाने संघका परमादर किया, एवं एक करोड चौरासी लाख भव्योंके साथ सम्मेदशिखरकी यात्रा की, वहांपर सुवर्णभद्रकूटकी पूजाकर चतुस्संघके साथ बडी भक्तिसे उक्त कूटकी वंदना की ॥६०–६३॥

साथमें गये हुए भव्योंके साथ उन्होने दीक्षा ली और घोर तपश्चर्याकर भावसेन मुनिने मुक्तिको प्राप्त किया। एक कूटकी वंदनासे यह फल मिलता है तो सर्व कूटोंकी वंदना करनेपर वह जीव निश्चित रूपसे मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

सम्मेदशिखरकी वंदना करनेपर नाना दुःखोंको देनेवाले तिर्यंच गति और नरक गतिका बंध नहीं होता है, सम्मेदशिखरकी वंदना भावसे करनेवाला जीव केवलज्ञानको पाकर तीन लोकको हाथमें रखे हुए आंवलेके समान जानता है, ॥६४–६६॥

अब सम्मेदशिखरकी यात्राको जिस क्रमसे करना चाहिये, उसकी विधि यहांपर कहते हैं ॥६७॥

गिरिराजकी यात्रा करनेके लिए जो उत्सुक हैं उसे सबसे पहिले निर्लोभ होना चाहिये, और दिल खोलकर द्रव्यव्यय करना चाहिये, उस शैलकी यात्राकी विधि व माहात्म्यको सुनो ॥६८॥

यात्रा करनेके पहिले सर्व देशोमें यात्रा का शुभ समाचार पत्रसे प्रेषित करें, सभी भव्य जीवोंको उसकी सूचना भेजें. सबसे पहिले भगवानका उत्तम विमान तैयार करावें, जिनेंद्रप्रभुको हाथीपर विराजमानकर यात्रा करे. इसी प्रकार वहांपर रथयात्रा भी करावे, एवं इंद्र ध्वज आदि विधानोंको करावे. यदि हो सके तो बिंबप्रतिष्ठा, प्रतिष्ठा आदिकर नंतर यात्रा करें, घरपर आकर यात्राके आदि व अंतमें रथयात्रादि शुभ कार्योंको करें, इन सब कार्योंको यथाशक्ति कर गिरिराजकी यात्रा करें। साथमें आये हुए साधर्मी बंधुवोंको वस्त्रादि प्रदान कर सहाय करें, यथायोग्य आवश्यक दान देवें जिससे कोई दुःखी न रहे इसका प्रयत्न करना चाहिये। ४–५ कोस ही रोज गमन करना चाहिये, जिससे बालकोंको वृद्धोंको मार्गमें कोई आयास न होवे ॥७०–७५॥

देवेंद्रोपि तदा प्राप्तो जगनिर्गमनन्तरन् ।
विमलां शिबिकां तस्य पुरस्कृत्य ननाम तं ॥३१॥
तामारुह्य ततो देवः सहेतुकवनं तदा ।
संप्राप्तो मोक्षदीक्षार्थं वैराग्यश्रियमुद्वहन् ॥३२॥
पौषकृष्णदशम्यां स त्रिशतैर्भूमिनायकैः ।
दीक्षां गृहीतवान् सार्धं तत्र मोक्षप्रदां सतां ॥३३॥
चतुर्थबोधं संप्राप्य तदैवाह्नि द्वितीयके ।
भिक्षार्थं गुल्मनगरं संप्राप्तोयं यदृच्छया ॥३४॥
धन्याख्यो नृपतिस्तत्र गोक्षीराहारमुत्तमं ।
ददौ संपूज्य तं भक्त्याऽपश्यदाश्चर्यपंचकं ॥३५॥
तपोवनमथ प्राप्य वर्षमेकं स मौनभाक् ।
महातीव्रं तपस्तेपे सहमानपरीषहान् ॥३६॥
चैत्रकृष्णप्रतिपदि तपसंदग्धकल्मषः ।
देवदारुतले ज्ञानं केवलं प्राप्तवान् प्रभुः ॥३७॥
कृते समवसारेण धनदेनाद्भुते विभुः ।
सहस्रसूर्यसदृशः स्वतेजोमंडलाद्विभौ ॥३८॥
तत्रोक्तगणनाथाद्यैः स्तुतो द्वादशकोष्ठगैः ।
वंदितः पूजितस्सर्वैः ददर्श कृपयाखिलान् ॥३९॥
गणी प्रश्नात्प्रसन्नात्मा दिव्यध्वानमथोल्लपन् ।
व्याख्यानं सप्ततत्वानां चकार परमेश्वरः ॥४०॥
विहरन् पुण्यदेशेषु स्वेच्छया जगतां पतिः ।
एकमासायुरुद्बुध्य सम्मेदोपर्यगात् प्रभुः ॥४१॥
सुवर्णभद्रमासाद्य कूटं तत्र महामतिः ।
शुक्लध्यानबलाद्देवोऽपूर्वं मोहमहारिजित् ॥४२॥
कायोत्सर्गं ततः कृत्वा त्रिशतैर्मुनिभिस्सह ।
सिद्धालये मनस्सम्यग्नियोज्याप तमेव सः ॥४३॥
तत्पश्चाद् भावसेनाख्यो नृपस्संघसमर्चकः ।
तद्यात्रां कृतवान् तस्य कथां वक्ष्ये च पावनीं । ॥४४॥
जम्बूमति शुभे क्षेत्रे भारते चार्यखंडके
अनंगदेशो विख्यातः तत्र गंधपुरी शुभा ॥४५॥

जिसतरह आहार, अभय, औषध व शास्त्र नामक चार दान भक्तिसे संघको प्रदान करें, जैन धर्मके जानकार भट्टारकोंको भी दान देवें, तथा आचार्योंको, विवेकी पंडितोंको ब्रह्मचारियोंको, धर्मात्मा यथोक्त श्रावकोंको शास्त्रकी आज्ञानुसार यथावत् दान देकर उस दिन यात्रा करे ॥७६-७८॥

बुद्धिमान् यात्रिको उचित है कि वह जिस दिन यात्राके लिए प्रयाण करें, यथाशक्ति पंचकल्याण पूजा करें, एवं मार्गमें दीन, वृद्ध, रोगी आदि दुःखी जीवोंकी रक्षा करें, एवं करुणा भावसे उनकी सहायता करें. इस प्रकार विधिपूर्वक सम्मेद शिखरकी यात्रा करनेपर संसारमें ऐसा कौनसा पदार्थ है, जो यात्रार्थीको नहीं मिल सके ? अथवा किसी कारणसे कोई भव्य उस यात्राको न कर सका तो उसे इसी भवमें उसका फल प्राप्त हो सकता है, उसकी विधि भी कहते हैं ॥७९-८२॥

सम्मेदशैल माहात्म्य जो लोहाचार्यके द्वारा प्रतिपादित है, और शास्त्रसम्मत है, उसे भक्तिसे श्रवण करें ॥८३॥

उत्तम माघ, चैत्र, भाद्रपद और कार्तिक मासमें कृष्ण पक्षकी प्रतिपदाको अनेक उत्सवोंको मनाते हुए सम्मेदशिखरके माहात्म्यको बहुत प्रयत्नपूर्वक आचार्यकी पूजाकर लोगोंको सुनावे. सबको धर्मस्त्रोके साथ एकत्रित कर ग्रंथको वस्त्रमें बांधकर आदर के साथ इस कथाको सुने, आदि और अंतमें चार प्रकारके दानोंको यथाशक्ति श्रावक देवे सम्मेदशिखर माहात्म्य पुस्तकको २० अथवा १ ही लिखाकर सुशील भव्योंको सादर प्रदान करे. ऐसा करनेपर विना यात्राके फलकी प्राप्ति होती है, जो श्रोता यात्रार्थी है उसे जो पुण्यफल प्राप्ति होती है उसे कभी भी नहीं कह सकते हैं ॥८४-९॥ 卐

卐 ८५-९० श्लोकोंका क. पुस्तकमें अधिक पाठ मिलता है।

कृत कारित तथा अनुमोदनासे भी सम्मेदशैलकी यात्राके फलको प्राप्त करते हैं, यह सत्य है, सत्य है, इसमें कोई संदेहकी बात नहीं है ॥९१॥

# प्रशस्ति

प्रसिद्ध मूलसंघमें बलात्कारगण, सरस्वती गच्छमें कुंदकुंद नामक महान् आचार्य हुए। उनकी परंपरामें धर्मकीर्ति नामक बुद्धि-मान् भट्टारक हुए, उनके निर्मल पट्टमें शीलभूषण नामक भट्टारक थे। उस पट्टके आभरणरूप धर्मके द्वारा धर्मभूषण नामक भट्टारक हुए, उस पट्टमें जगद्भूषण नामक भट्टारक हुए, उस पट्टको प्रकाशित करने-वाले विश्वभूषण नामक भट्टारक थे। उस पट्टके अलंकाररूप श्री देवेंद्र भूषण हुए, उस पट्टमें यतिव्रतमें निष्ठ श्री सुरेंद्रभूषण नामक भट्टारक हुए, उस पट्टमें अनेक सद्‌गुणोंके धारक लक्ष्मीभूषण नामक परम धार्मिक भट्टारक हुए, ये सभी भट्टारक पूर्वोक्त सद्‌गुणोंसे मंडित थे। और उनमें विश्वभूषण नामक भट्टारक हुए, उनके शिष्य विनयसागर नामक ब्रह्मचारी हुए, उनका शिष्य हर्षसागर नामक ब्रह्मचारी प्रकाशित हुए और उनके गुरुभ्राता पं. हरिकृष्णक नामका हुआ, उनके शिष्य पं. जीवनराम नामके थे, उनके शिष्य प्रसिद्ध सद्‌गुणोंसे युक्त हेमराज थे। इनके बीचमें ब्रह्महर्षसागर नामका बहुत बुद्धिमान् शील समुद्र व दयाके धारक जिनेंद्रभूषण नामक विवेकी भट्टारक हुए। उनसे आचार्य पदको लेकर श्री सुमतिकीर्ति नामक साधु हुए, जो कि शीलवान् व अनेक गुणोंसे युक्त थे। उनके पढनें के लिए, अन्य सद्‌गुणशाली जो शिष्य हैं उनके पढने के लिए या और भी जो भव्य जगत्‌में जैनमार्गमें व्रतमें जिनको आदर है, जो इसे पढना चाहते हैं, उनके लिए एवं- ॥९२-१०४॥

उनके पढनेके लिए यह सम्मेदशिखरमाहात्म्य नामका ग्रंथ देवदत्त विद्वान् के द्वारा कहा गया है, भट्टारकपदमें स्थित जिनेंद्रभूषणकी आज्ञाको शिरोधार्यकर पं. देवदत्तद्वारा यह ग्रंथ रचा गया है।

यह देवदत्त अटेरग्रामके वासी हैं, कान्यकुब्ज कुलमें उत्पन्न ब्राह्मण है, सर्व भूतलमें प्रसिद्ध वटेश्वर क्षेत्रमें नेमिनाथ भगवंतके चैत्यालयमें रहकर यह ग्रंथ आनंदसे रचा गया है ॥९२-१०८॥ (卐)

सम्मेदशिखरकी महिमाको सूचित करनेवाला यह ग्रंथ सम्मेद-शिखरमाहात्म्य लोहाचार्यकी उक्तिसे सम्मत है, अर्थात् लोहाचार्य परंपरामें हैं, देवदत्त कविके द्वारा गुरुभक्ति पूर्वक रचा गया है।

जो इसे श्रद्धासे योग्यविधिके साथ पढता है, या सुनता है, वह सर्व पापोंको दूरकर अक्षय पुण्यको प्राप्त करता है।

पुत्रकी इच्छा करनेवाले पुत्रको, धनकी इच्छा करनेवाले धनको इस प्रकार सर्व इच्छावोंको मनसे इच्छा करनेपर मानव सम्मेदशिख-रकी यात्रासे पूर्ण कर सकता है।

सम्मेदशिखरकी यात्राका जो उत्तम फल बताया गया है, उसके श्रवण करनेसे भी भव्य उस फलको निश्चयसे प्राप्त करता है।

बाण, समुद्र, गज व चन्द्र अर्थात् बाणसे ५ समुद्रसे ४, गजसे ८, और चंद्रसे १, अंकानां वामतो गतिः इस नियमानुसार १८४५ विक्रम संवत् मे भाद्रपद कृष्ण द्वादशी तिथिमें गुरुवारको पुष्य नक्षत्रमें शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाले विद्वान् देवदत्त कविके द्वारा यह सम्मेद-शिखर माहात्म्य ग्रंथ पूर्ण किया गया है, इस ग्रंथमें १८०० श्लोक कहे गये हैं, इसे आदरपूर्वक विद्वान् भावसे स्वीकार करें ॥१०९-११५॥ 卐

(卐) प्रशस्तिका श्लोक ९२से १०८ पर्यंत अधिक पाठ क. पुस्तकमें पाया जाता है

卐 पहिले १११ से ११५ तक श्लोकका पाठ ए. पुस्तकमें अधिक पाया जाता है

卐

मूलकर्त्ता :—
**श्रीमद्भगवत्समंतभद्राचार्य**

भावानुवादकः—